माँ टेरेसा

सुदेव रायचौधुरी

हिन्दी रूपान्तर
जगत शङ्खधर

लेखकीय

'यह तो उनकी ही देन है'—नोबल पुरस्कार पाने के बाद ये शब्द माँ टेरेसा के कंठ से उच्चरित हुए थे। वह दिन था बुधवार, 17 अक्तूबर, 1979। शाम छह बज कर चालीस मिनट पर नार्वे से टेलिप्रिंटर से दो पंक्तियों का एक समाचार आया नोबल कमेटी के अध्यक्ष अध्यापक जान सानानस ने सेवा, प्रेम तथा करुणा की प्रतिमूर्ति माँ टेरेसा को 1979 का नोबल शांति पुरस्कार देने की घोषणा की है। मगर जिनके लिए यह घोषणा की गयी थी, वह उस समय मध्य कलकत्ता के मौलाली के पास जोड़े-गिरजे के दूसरी ओर 54 ए, आचार्य जगदीश बसु रोड के भवन में दीन-दुखियों की चिंता में लीन थीं। यह उन्हीं के द्वारा स्थापित 'मिशनरीज ऑफ चैरिटीज' का कार्यालय है। यहीं से वह निरंतर हो रहे अभिनंदनों का जवाब देने में व्यस्त थीं।

कलकत्ता में सबसे पहले नोबल पुरस्कार रवीन्द्रनाथ ठाकुर को मिला। 1913 में। 'मेरा सिर झुका दो अपने चरणरज के नीचे, मेरे सारे अहंकार मुझको डुबो दो आँखों के आँसू में।'—'गीतांजलि' का यह निवेदन माँ टेरेसा के जीवन से भी जुड़ कर एक हो गया है। एक साहित्य में, काव्य में। दूसरा सेवा में, ममता में। परम करुणामय की भावना में इन दोनों में कितना अपूर्व साम्य है! रवीन्द्रनाथ के बाद 1930 में नोबल पुरस्कार मिला सी० वी० रमण को, रसायन में। वैज्ञानिक रमण का शोधस्थल भी कलकत्ता रहा। अन्त में सुदूर अमरीका में रह कर भी एक और व्यक्ति ने भारत का गौरव बढ़ाया। वे हैं डॉक्टर हरगोविंद खुराना। शरीर-विज्ञान के लिए खुराना को यह सम्मान मिला। जन्म से भारतीय इस वैज्ञानिक ने बाद में अमरीकी नागरिकता ग्रहण की। और 1979 में रसायन-शास्त्र का पुरस्कार पाने वाले पाकिस्तान के अब्दुस सलाम का जन्म भी भारत में ही हुआ। लम्बी प्रतीक्षा के बाद, अलबानिया में पली, भारतीय नागरिक कलकत्ता की माँ टेरेसा को आज विश्वजननी का सम्मान मिला है। नोबल पुरस्कार की कीमत है एक लाख नब्बे हजार अमरीकी डालर। भारतीय मुद्रा में लगभग सोलह लाख रुपये।

नोवल पुरस्कार मिलेगा, यह मैंने पहले कभी भी नहीं सोचा था। 1976 के अन्त में माँ टेरेसा के कर्मजीवन को लेकर मेरी लिखी हुई किताव बँगला में प्रकाशित हुई। कलकत्ता के आनन्द पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड ने इस पुस्तक को प्रकाशित कर अनगिनत पाठकों के समक्ष माँ टेरेसा के क्रियाकलापों के विभिन्न पक्षों को उजागर किया। इसके लिए व्यक्तिगत तौर पर मैं उन लोगों के प्रति कृतज्ञ हूँ।

इससे पहले 1975 में 'देश' पत्रिका में माँ टेरेसा तथा उनके प्यार के पात्र-पात्राओं के वारे में लेखक का एक निवंध प्रकाशित हुआ था। निवंध प्रकाशित होने के वाद 'देश' के संपादक सागरमय घोप के पास एकाधिक पत्र आये। लेख पढ़कर पत्र-लेखकों में से वहुतों को ही परिपूर्ण तृप्ति नहीं मिली। परिपूर्ण न सही, उस तृष्णा को कुछ मिटाने के उद्देश्य से ही यह विनम्र प्रयास है। मगर माँ टेरेसा कभी भी नहीं चाहतीं कि उनकी जीवनी लिखी जाये। वल्कि इसे वह नापसन्द करती हैं। माँ के अपने शब्दों में—"इट इज़ ए काल फ्रॉम हिम टु वर्क अमंग्स्ट द पूअरेस्ट ऑफ़ द पूअर।" जन्म से विदेशी मगर प्रेम में, कर्म में भारतीय एक महान महिला दरिद्र, पीड़ित मानव के लिए क्या कर रही हैं, सिर्फ़ दया-दाक्षिण्य देकर ही नहीं, किस तरह प्यार से दुखी हृदय की घोर हताशा और निस्संगता को उन्होंने तोड़ना चाहा है, उसका ही कुछ विवरण इस ग्रंथ में दिया गया है।

हिन्दी में 'माँ टेरेसा' प्रकाशित करने के लिए मैं कलकत्ता के आनन्द वाज़ार प्रकाशन के हिन्दी साप्ताहिक 'रविवार' के योग्य संपादक सुरेन्द्रप्रताप सिंह का आभारी हूँ। सुरेन्द्रप्रताप के फलस्वरूप ही दिल्ली की अत्यंत श्रेष्ठ हिन्दी प्रकाशन संस्था राधाकृष्ण प्रकाशन ने 'माँ टेरेसा' का हिन्दी रूपान्तर कराया। इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

लेखन के मामले में व्यक्तिगत साक्षात्कार तथा मिलने-जुलने के अलावा डेगमयेंड डयेगेर तथा मैलकम मैगारिज की किताबों के कुछ हिस्सों से भी लेखक ने मदद ली है। अँग्रेज़ी में प्रकाशित होने पर भी, माँ टेरेसा के वारे में, भारतीय भापा में प्रकाशित यह दूसरा ग्रंथ है। हिन्दी में पहला ग्रंथ। लेखन के मामले में सव्यसाची सन्तोपकुमार घोप ने पांडुलिपि पर नज़र दौड़ाकर ही क्षण भर में नामकरण कर दिया। कृतज्ञता-ज्ञापन करके उनका ऋण चुकता करने की धृष्टता मुझसे नहीं होगी।

—सुदेव रायचौधुरी

एक

मौलाली के मोड़ से पार्क सर्कस की ओर ट्राम के तीन-चार स्टॉप पर जोड़ा-गिरजाघर के सामने वाले फुटपाथ पर लोअर सर्कुलर रोड, यानी आजकल के आचार्य जगदीश बसु रोड पर थोड़ा आगे जाने पर आसमानी रंग का चारमंजिला मकान है। इसके ऊपर माता मेरी की खड़ी सफेद संगमरमर की मूर्ति राह चलने वालों की दृष्टि खींच लेती है। ज्ञात-अज्ञात सबके स्वागत के लिए ही मानो 'कल्याणमयी माँ' वहाँ खड़ी हो। सिर का कपड़ा थोड़ा हटा, कपाल पर से जरा उठा हुआ है। चेहरे पर मुसकान है।

बड़ी सड़क से मिलती हुई एक छोटी-सी गली है। गली में घुसते ही दाहिनी ओर एक दरवाजा है। बाहर आसमान पर बादल छाये हैं। तीसरे पहर से ही शाम-सी लग रही थी। थोड़ी देर पहले ही एक बौछार पड़ चुकी थी। वृक्षों के पत्तों पर बौछारों की छाप स्पष्ट है। आसपास के मकान भी भीगे भीगे हैं। ट्रामों और बसों की आवाज के सिवा इस अंचल में सन्नाटा रहता है। कुंडी खटखटाते ही एक युवती बाहर निकल आयी। अठारह-उन्नीस वरस की युवती थी। वह नीले किनारे की सफेद साड़ी और पूरी आस्तीन का ब्लाउज पहने हुए थी। कंधे तक नाटी होते हुए भी गले में चाँदी का क्रॉस का निशान ऐसे पहन रखा था कि नजरों में अवश्य पड़े। नीचे की मंजिल में एक कमरे में बैठाकर युवती सन्यासिनी बोलीं, "आप मदर की तलाश में आये हैं? मदर तो अभी निर्मला शिशु-भवन में गयी हैं। वह बहुत दूर नहीं, पास ही है। इटाली मार्केट के सामने।"

माँ ने मुझसे तीन से चार बजे के बीच आने को कहा था। बाहर के दरवाजे पर अँग्रेजी में लिखा हुआ था—मदर टेरेसा। नाम के पास 'इन' ही तो नजर में पड़ा। 'आउट' तो बंद था। ऐसा होने पर भी वे नहीं थीं। मन खराब हो गया। तो क्या माँ मुझसे मुलाकात न करेंगी? नोटबुक खोलकर पता झट-से एक बार फिर मिलाया। हाँ, ठीक ही तो है—'मिशनरीज ऑफ़ चैरिटीज', 94-ए, लोअर सर्कुलर रोड, कलकत्ता-16। पहली मंजिल पर ईसा मसीह की तसवीर की ओर कुछ देर तक देखता रहा। आँगन में बोगनविलिया के पत्तों से उस समय

भी बूंद-बूंद बरसात के पानी पड़ने की हलकी-हलकी आवाज़ कानों में पड़ रही थी। बादलों के अँधेरे में क्या करूँ, यह सोच न पाने पर भी कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा हुआ। तभी एक और भगिनी, सिस्टर क्लेयर, भागी-भागी आयीं। पहली अक्तूबर की सुबह बड़ाबाज़ार में सत्यनारायण पार्क के सामने श्वेताम्बर जैन-मंदिर में उपासना के समय उनसे परिचय हुआ था। माँ के साथ मेरे इस साक्षात्कार की बात सिस्टर क्लेयर जानती थीं। वे बोलीं, "निराश न हों। पास ही शिशु-भवन है। वहाँ चले जाइये। तीन-चार मिनट का रास्ता है। वहीं भेंट होगी। बच्चों की पुकार पर ध्यान न देकर क्या माँ बैठी रह सकती हैं?"

कहीं ऐसा न हो कि वहाँ भी भेंट न हो, इसीलिए उसी दम उठ गया। जिस दरवाज़े से आया था उसी से निर्मला शिशु-भवन गया। इंटाली मार्केट की उलटी तरफ़ लोअर सर्कुलर रोड पर ही यह भवन है। सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर पहुँचते ही एक नाचती हुई किशोरी को देखा। उसे घेरे हुए छोटी लड़कियाँ बैठी थीं। यह, मानो, कमरे में शिशु-मेला हो। बिलकुल सामने की कुर्सी पर बैठी महिला मदर टेरेसा थीं। 'वन्य वन में सुंदर, शिशु क्रोड़ में'—साहित्यिक संजीव चट्टोपाध्याय का वह वर्णन सहसा आँखों के आगे तैर गया। दो बच्चों को गोद में लिये माँ दुलार करने में व्यस्त थीं। चार-पाँच बरस की एक लड़की के कोमल मुँह पर प्यार लेते-लेते माँ ने पास की कुर्सी पर मुझे बैठने के लिए इशारा किया।

मैं कुर्सी खींचकर बैठ गया। मन में न तो कोई डर था, न कोई संशय। लोरेटो की उस संन्यासिनी की बात अक्षरशः सच थी। मदर टेरेसा के संबंध में सबसे विस्मयजनक बात है उनका साधारणत्व। और इसी गुण ने उन्हें असाधारण बना दिया है। उनके नाम के पीछे कोई काल्पनिक वस्तु नहीं है। सहज, सरल और बहुत-सी स्त्रियों की तरह ही उनका जीवन आडंबररहित है।

वे शुद्ध बँगला में बोलीं, "पता है, इस लड़की को सड़क पर से उठाकर लायी हूँ। उस समय यह नवजात शिशु थी। और अब इसके माँ-बाप कहने के लिए इस शिशु-भवन की सिस्टर हैं। प्यार पाकर बिटिया मेरी गोद छोड़ना नहीं चाहती।" मुह के पास मुँह ले जाकर माँ बोलीं, "तुम्हारा जाँघिया कहाँ है? अरे बेटी, लोग क्या कहेंगे?"

पता नहीं बच्ची समझी या नहीं, पर माँ की बात पर बच्ची के चेहरे पर हँसी फूट पड़ी। बात कोई न निकली। काले फ्रेम का चश्मा आँखों से उतारकर केस में रखते हुए बोलीं, "मेरी अणिमा बेटी बात नहीं कर सकती। जन्म से ही वह मूक है।" सारी सिस्टरों की तरह माँ का पहनावा भी नीले किनारे की सफ़ेद साड़ी थी। बदन पर सफ़ेद पूरी बाँहों के ब्लाउज़ में जगह-जगह पर रिक्त स्थानों पर क्रूस-काँटों का काम साफ़ था। कंधे के बराबर क्रॉस का चिह्न यत्नपूर्वक लगाया हुआ था। हाथों में जप करने की माला थी। वयस पैंसठ से अधिक होने

पर भी युवकों-सी मजबूत और समर्थ थीं। चमड़ी पर झुर्रियाँ पड़ने से क्या, *उनके चेहरे की मुस्कान में अनन्त शक्ति है,* अनुप्रेरणा का स्रोत है। नीरव सेवा की प्रतीक इस महान महिला ने पचास वर्ष इस कलकत्ता शहर में बिता दिये हैं। पैतृक मकान अल्बानिया में होने पर भी मदर टेरेसा का जन्म एड्रियाटिक सागर के पार यूगोस्लाविया के स्कपजे शहर में हुआ था। सन उन्नीस सौ दस में सत्ताईस अगस्त को। सात वर्ष की उम्र में पिता को खोने के बाद टेरेसा माँ के पास ही पलीं। उनकी दो बहनें और एक भाई थे। माँ और बहनें गुजर चुकीं। रह गया है एक भाई। वह आजकल रोम में हैं।

दो

सागर की विशालता कितना अनुप्राणित करती है, यह तो नहीं पता, पर स्कूली छात्रा होने के समय से ही उनकी ध्यान-धारणा ईश्वरमुखी हो गयी। अन्तर के अन्त:स्थल में कुछ विचित्र-सा अनुभव करती थीं। दिन-रात जैसे कोई उन्हें बुलाता रहता था। उस पुकार में न कोई संशय था और न था कोई अशुभ इंगित। किन्तु, उस पुकार का मूल स्वर अभय का था। प्रथम विश्वयुद्ध का सूत्रपात बल्कान देशों में हो चुका था। टेरेसा उस समय मदर टेरेसा नहीं हुई थीं। और-तो-और, *संन्यासी जीवन का प्रथम नाम मेरी टेरेसा भी उस समय नहीं लिया था।* छोटे-से अल्बानिया की लड़की अगनेस गोक्शा बोजाक्सिया परवर्ती जीवन में ख्रीस्टीय दीक्षा की प्रतिमूर्ति मदर टेरेसा हो गयी। क्या प्रथम विश्वयुद्ध की प्रतिक्रिया ने चार वर्ष के शिशु-मन पर भी किसी प्रकार का प्रभाव डाला था? इतिहास के अन्वेषक इसका निर्णय करेंगे। किन्तु शोषक और शोषित के सदा के द्वन्द्व को केंद्र कर समस्त यूरोप में तथा विश्व में उसका नगाड़ा बज उठा और तमाम लोगों की तरह निश्चय ही उस युद्ध की लहर ने टेरेसा के माता-पिता के जीवन में भी आंदोलन पैदा कर दिया था। *इसके ठीक तीन बरस बाद—विश्वयुद्ध समाप्त होने में* उस समय भी पूरा एक बरस बाकी था—टेरेसा ने पिता को खो दिया। उस समय उनकी आयु मात्र सात बरस थी। युद्ध से उत्पन्न स्थिति व पितृवियोग—एक साथ ही इन दो अप्रत्याशित घटनाओं ने क्या शिशु टेरेसा के मन को आंदोलित न किया होगा?

आयरलैंड के लोरेटो संप्रदाय के मठ की संन्यासिनियों के प्रभाव ने उन्हें संन्यासी जीवन की ओर खींचा। सोचकर आश्चर्य होता है कि टेरेसा के जन्म के मात्र तैंतालीस बरस पहले *1867 में इस आयरलैंड के टायरन प्रदेश के छोटे-से*

शहर डैनगेनन में भगिनी निवेदिता ने जन्म लिया था। उनका पहले का नाम मार्गरेट एलिज़ाबेथ नोब्ल था। उनके पितामह थे रेवरेंड जॉन नोब्ल—वे एक गिरजे के याजक—पादरी—थे। बीसवीं सदी के आरंभ में टेरेसा का जन्म हुआ था, और भगिनी निवेदिता का जन्म उन्नीसवीं सदी के अंतिम भाग में हुआ था। वय की पृथकता रहने पर भी विचारधारा में ये दो विदेशिनी एक ही सूत्र में बँधी हैं। नीरव, अनलस कर्म में प्रतिदिन, प्रतिमुहूर्त इनका आत्म-समर्पण है। व्रत के लिए प्राण-विसर्जन कर देना ही जीवन का आदर्श है, सिद्धि प्राप्त करना नहीं। यही तो था निवेदिता का व्रत। धर्म के प्रेम के साथ स्वदेश-प्रेम था उनके चरित्र की मधुरता। यीशु को समर्पण कर माँ टेरेसा का जीवन भी बिलकुल वैसा ही है। निवेदिता की तरह माँ टेरेसा का भी कर्म-जीवन शिक्षिका के रूप में ही हुआ।

मैंने इसी बीच माँ से पूछा, "आज क्या कोई उत्सव का दिन है?"

"ठीक समझे। जिनके नाम के अनुकरण पर मेरा नाम है उन्हीं संत टेरेसा का आज जन्मदिन है।"

चार सौ वरस पहले इतिहास के संत टेरेसा ने भी अठारह वरस की उम्र में सब-कुछ त्याग कर कठिन संन्यासी-जीवन चुना था। उस समय के कारमेल मठ की सहधर्मिणी लोगों के व्यवहार से वे संतुष्ट न हो सकीं। सैंतालीस वरस की उम्र में स्थानीय पादरियों का सारा विरोध अग्राह्य कर पोप की अनुमति लेकर स्पेन के आडिला शहर में, अपने जन्म-स्थान में नया मिशन बना लिया। केवल चार सिस्टर साथिनें उनको मिली थीं। आत्म-विश्वास की पूँजी लेकर संत टेरेसा ने धर्मांध स्पेन में नये जीवन की वाणी सुनायी। कैसा आश्चर्यजनक मेल था! पुनर्जन्म में विश्वास हमारा धर्मगत अधिकार है। उसी अधिकार-बोध में विश्वास करने की आकांक्षा लेकर इतिहास के संत टेरेसा डेढ़ हज़ार मील और चार सौ वरस का व्यवधान धो-पोंछकर फिर लौट आये हैं।

मैंने सोचा कि माँ ने शायद अब अपनी स्मृति की झोली में से कुछ निकालना शुरू किया है। न, उधर गयीं ही नहीं। माँ की अपनी बात के अनुसार, "जीवनी मेरी जीवित दशा में न लिखी जाये। यीशु की जीवनी उनके जीवनकाल में नहीं लिखी गयी। मानव-जाति के कल्याण के लिए यीशु आत्मत्याग कर गये हैं। मुमूर्षु, निराश्रय लोगों को आश्रयदान मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़ का मुख्य उद्देश्य—मुख्य व्रत बना।"

इतनी दूर क्यों जाना पड़ेगा? यह जो गंगा के पार दक्षिणेश्वर के मंदिर के रामकृष्ण परमहंसदेव हैं—इन परम पुरुष का कथामृत मुद्रित रूप में हमें उनकी जीवित अवस्था में तो मिला नहीं! श्रीमां लिखित ठाकुर के उस कथामृत का स्वाद हमको उनके देहत्याग के बहुत बाद मिला।

कुर्सी के सामने नाचती हुई युवती को देखकर बोलीं, "उस लड़की को नाचते

देख रहे हैं, उसे भी हम सिस्टर लोग एक दिन सड़क पर से उठाकर लाये थे। सिस्टरों के लाड़-प्यार, देखभाल से लड़की शैशव-कैशोर्य पार कर अब पूर्ण यौवना हो गयी है। वह ब्याह करेगी, पति की गृहस्थी करेगी। वह माँ बनेगी।"

थोड़ी दूर पर ही एक शिशु था। चार बरस का रहा होगा। लँगड़ा-लँगड़ाकर चलते देखकर माँ ने पैर पर हाथ फेरना शुरू किया, "तुम्हारे पैरों में बैंडेज क्यों है? लगता है, शरारत की होगी?" माँ ने शिशु को कलेजे से लगा लिया।

माँ देखने में दूसरी भारतीय स्त्रियों की तरह ही लग रही थीं। शरीर का रंग छोड़कर बाकी सब-कुछ हमारी बहनों की तरह ही था। दुहरा चेहरा। ऊँचाई पाँच फुट के लगभग। आँखों में धूसर और बादामी का सम्मिश्रण होने पर भी गंभीरता है। पूरे चेहरे की झुर्रियों से प्रगट होती है उनकी वय और कठोर जीवन-साधना। इस वृद्धा महिला की शक्ल पूरी तौर पर चमक-दमक से हीन घरेलू महिला-सी थी।

नीचे फ़र्श पर सिस्टर बैठी हुई थीं। इस शुभ दिन में वे भी शिशुओं की तरह माता का सान्निध्य पाना चाहती थी। माँ को घेर कर, जिसे जहाँ जगह मिली थी, बैठी थी। एक सिस्टर ने जवाब दिया, "सीढ़ी पर से उतरते वक़्त अचानक लड़के का पैर फिसल गया था।" तेरह-चौदह वर्ष का एक किशोर माँ के पास ही योगासन के ढंग से बैठा था। मन लगाकर गाना-बजाना-दुहराना सुन रहा था। माँ कुर्सी छोड़कर उठ खड़ी हुई। उस किशोर के पास आकर बैठ गयी। क्षण-भर में ही लड़के को दोनों हाथों से उठाकर अपनी ही ख़ाली कुर्सी पर बैठा दिया। बोली, "यह बहुत अच्छा लड़का है। इसके माँ-बाप नहीं हैं। शिशु-भवन की सिस्टरों का निष्काम स्नेह उसके प्यारे गले को और भी मधुर बना रहा है।" माँ की बात समाप्त होने से पूर्व ही किशोर के कंठ से निकले संगीत—'बोलो माँ तारा, दाँडाइ कोथा'[1]—ने कुछ क्षणों के लिए हॉल को नीरवता से भर दिया।

पास ही की कुर्सी पर माँ की बहन फिलिमाइन चूनी और उनके अध्यापक पति लूके चूनी बैठे थे। अपने न होते पर भी माँ के पास यह अधेड़ दम्पत्ति सुदूर आस्ट्रेलिया से यहाँ आये थे। उनका उद्देश्य था मदर को और मदर की बनायी तमाम संस्थाओं को देखना।

तीन

कोई तसवीर खींचकर लाया था, और कोई अपनी लिखी कविता पढ़कर सुना रहा था, बहुत-से गाना भी गा रहे थे। अधिकतर बच्चे बार-बार अपनी माँ

1. माँ तारा, बताओ कहाँ रहूँ?

शहर डैनगेनन में भगिनी निवेदिता ने जन्म लिया था। उनका पहले का नाम मार्गरेट एलिज़ाबेथ नोब्ल था। उनके पितामह थे रेवरेंड जॉन नोब्ल—वे एक गिरजे के याजक—पादरी—थे। बीसवीं सदी के आरंभ में टेरेसा का जन्म हुआ था, और भगिनी निवेदिता का जन्म उन्नीसवीं सदी के अंतिम भाग में हुआ था। वय की पृथकता रहने पर भी विचारधारा में ये दो विदेशिनी एक ही सूत्र में बँधी हैं। नीरव, अनलस कर्म में प्रतिदिन, प्रतिमुहूर्त इनका आत्म-समर्पण है। व्रत के लिए प्राण-विसर्जन कर देना ही जीवन का आदर्श है, सिद्धि प्राप्त करना नहीं। यही तो था निवेदिता का व्रत। धर्म के प्रेम के साथ स्वदेश-प्रेम था उनके चरित्र की मधुरता। यीशु को समर्पण कर माँ टेरेसा का जीवन भी बिलकुल वैसा ही है। निवेदिता की तरह माँ टेरेसा का भी कर्म-जीवन शिक्षिका के रूप में ही हुआ।

मैंने इसी बीच माँ से पूछा, "आज क्या कोई उत्सव का दिन है?"

"ठीक समझे। जिनके नाम के अनुकरण पर मेरा नाम है उन्हीं संत टेरेसा का आज जन्मदिन है।"

चार सौ बरस पहले इतिहास के संत टेरेसा ने भी अठारह बरस की उम्र में सब-कुछ त्याग कर कठिन संन्यासी-जीवन चुना था। उस समय के कारमेल मठ की सहधर्मिणी लोगों के व्यवहार से वे संतुष्ट न हो सकीं। सैंतालीस बरस की उम्र में स्थानीय पादरियों का सारा विरोध अग्राह्य कर पोप की अनुमति लेकर स्पेन के आडिला शहर में, अपने जन्म-स्थान में नया मिशन बना लिया। केवल चार सिस्टर साथिनें उनको मिली थीं। आत्म-विश्वास की पूँजी लेकर संत टेरेसा ने धर्मांध स्पेन में नये जीवन की वाणी सुनायी। कैसा आश्चर्यजनक मेल था! पुनर्जन्म में विश्वास हमारा धर्मगत अधिकार है। उसी अधिकार-बोध में विश्वास करने की आकांक्षा लेकर इतिहास के संत टेरेसा डेढ़ हज़ार मील और चार सौ बरस का व्यवधान धो-पोंछकर फिर लौट आये हैं।

मैंने सोचा कि माँ ने शायद अब अपनी स्मृति की झोली में से कुछ निकालना शुरू किया है। न, उधर गयीं ही नहीं। माँ की अपनी बात के अनुसार, "जीवनी मेरी जीवित दशा में न लिखी जाये। यीशु की जीवनी उनके जीवनकाल में नहीं लिखी गयी। मानव-जाति के कल्याण के लिए यीशु आत्मत्याग कर गये हैं। मुमूर्षु, निराश्रय लोगों को आश्रयदान मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़ का मुख्य उद्देश्य—मुख्य व्रत बना।"

इतनी दूर क्यों जाना पड़ेगा? यह जो गंगा के पार दक्षिणेश्वर के मंदिर के रामकृष्ण परमहंसदेव हैं—इन परम पुरुष का कथामृत मुद्रित रूप में हमें उनकी जीवित अवस्था में तो मिला नहीं! श्रीमाँ लिखित ठाकुर के उस कथामृत का स्वाद हमको उनके देहत्याग के बहुत बाद मिला।

कुर्सी के सामने नाचती हुई युवती को देखकर बोलीं, "उस लड़की को नाचते

देख रहे हैं, उसे भी हम सिस्टर लोग एक दिन सड़क पर से उठाकर लाये थे। सिस्टरों के लाड़-प्यार, देखभाल से लड़की शैशव-कैशोर्य पार कर अब पूर्ण यौवना हो गयी है। वह ब्याह करेगी, पति की गृहस्थी करेगी। वह माँ बनेगी।"

थोड़ी दूर पर ही एक शिशु था। चार बरस का रहा होगा। लँगड़ा-लँगड़ाकर चलते देखकर माँ ने पैर पर हाथ फेरना शुरू किया, "तुम्हारे पैरों में बैंडेज क्यों है? लगता है, शरारत की होगी?" माँ ने शिशु को कलेजे से लगा लिया।

माँ देखने में दूसरी भारतीय स्त्रियों की तरह ही लग रही थीं। शरीर का रंग छोड़कर बाकी सब-कुछ हमारी बहनों की तरह ही था। दुहरा चेहरा। ऊँचाई पाँच फुट के लगभग। आँखों में धूसर और बादामी का सम्मिश्रण होने पर भी गंभीरता है। पूरे चेहरे की झुर्रियों से प्रगट होती है उनकी वय और कठोर जीवन-साधना। इस वृद्धा महिला की शक्ल पूरी तौर पर चमक-दमक से हीन घरेलू महिला-सी थी।

नीचे फ़र्श पर सिस्टर बैठी हुई थीं। इस शुभ दिन में वे भी शिशुओं की तरह माता का सान्निध्य पाना चाहती थीं। माँ को घेर कर, जिसे जहाँ जगह मिली थी, बैठी थीं। एक सिस्टर ने जवाब दिया, "सीढ़ी पर से उतरते वक्त अचानक लड़के का पैर फिसल गया था।" तेरह-चौदह वर्ष का एक किशोर माँ के पास ही योगासन के ढँग से बैठा था। मन लगाकर गाना-बजाना-दुहराना सुन रहा था। माँ कुर्सी छोड़कर उठ खड़ी हुईं। उस किशोर के पास जाकर बैठ गयीं। क्षण-भर में ही लड़के को दोनों हाथों से उठाकर अपनी ही खाली कुर्सी पर बैठा दिया। बोलीं, "यह बहुत अच्छा लड़का है। इसके माँ-बाप नहीं हैं। शिशु-भवन की सिस्टरों का निष्काम स्नेह उसके प्यारे गले को और भी मधुर बना रहा है।" माँ की बात समाप्त होने से पूर्व ही किशोर के कंठ से निकले संगीत—'बोलो माँ तारा, दाँडाइ कोथा'[1]—ने कुछ क्षणों के लिए हॉल को नीरवता से भर दिया।

पास ही की कुर्सी पर माँ की बहन फिलिमाइन चूनी और उनके अध्यापक पति लूके चूनी बैठे थे। अपने न होने पर भी माँ के पास यह अधेड़ दम्पत्ति सुदूर आस्ट्रेलिया से यहाँ आये थे। उनका उद्देश्य था मदर को और मदर की बनायी तमाम संस्थाओं को देखना।

तीन

कोई तसवीर खींचकर लाया था, और कोई अपनी लिखी कविता पढ़कर सुना रहा था, बहुत-से गाना भी गा रहे थे। अधिकतर बच्चे बार-बार अपनी माँ

1. माँ तारा, बताओ कहाँ रहूँ?

'मदर टेरेसा' के प्रति इस शुभ दिन पर प्रेम प्रकट करने में व्यस्त थे। जिन माँ ने अपना प्यार उजाड़ दिया था, उन माँ को उनका थोड़ा-वहुत लौटाकर सचमुच कितना संतोष था ! माँ भी संतानों के प्यार में तन्मय थीं। मैंने माँ से जानना चाहा—इसमें ऐसा क्या आनंद निहित है जिसके लिए आप पागल हैं ? कमर के नीचे से चावियों के गुच्छे पर नहीं, जपमाला पर हाथ रखकर वोलीं, "यह तो यीशु की वात है ! क्यों, यीशु ने ही तो कहा था, 'मैं भूखा हूँ, मुझे भोजन दो। मैं नंगा हूँ, मुझे वस्त्र दो। मैं निराश्रित हूँ, मुझे आश्रय दो। मैं प्यार के लिए कंगाल हूँ, मुझे प्यार दो।' प्रेम के राजा यीशु तो बच्चों के रूप में, अनाथ वनकर, पंगु होकर, इनमें ही विराजमान हैं !"

"जो लोग जीवों पर प्रेम करते हैं वे लोग ही ईश्वर की सेवा करते हैं।" स्वामी विवेकानन्द के इस आदर्श में विश्वास रखने वाली मदर टेरेसा वोलीं, "जेव से दो-चार पैसे दे देने से ही दरिद्रों की सेवा नहीं होती। धन के साथ-साथ उन्हें प्यार देना होगा। खोटा रुपया जिस तरह वाज़ार में कोई दूकानदार नहीं लेना चाहता, उसी तरह प्यार अगर हृदय से नहीं आता तो वह खोटे रुपये ही की तरह है।"

माँ को समीप पाकर पूछा, "अच्छा माँ, आपका शैशव-कैशोर्य कहाँ वीता ? जन्मभूमि कहाँ है ? और कव संन्यासिनी का जीवन चुना ?"

प्रश्नों को सुनकर माँ के चेहरे पर मुसकान छा गयी। मुसकान-भरे उस चेहरे से हम सभी परिचित हैं। शुद्ध और अनास्वादित आनंद की प्रतीक इस हँसी के माधुर्य को आँखों से देखे विना विश्वास करना कठिन है।

"मेरा घर? वह तो एक सुख का नीड़ था। स्कूल की छात्रावस्था में अन्तर्यामी की पुकार पर जव ध्यान दिया—जव संन्यासिनी वनने के लिए मन फड़कता था, तव तो यह सोच कर वहुत वुरा लग रहा था कि मुझे यह सुंदर घर छोड़कर चले जाना होगा—वहाँ नहीं, यहाँ नहीं, कहीं और, और कहीं।"

पहाड़ों से घिरे दार्जिलिंग के कर्सियांग में जेसुइटों के सेवा के कामों की वातें सुनकर हजारों मील दूर वैठकर कुमारी टेरेसा के मन में मिशनरियों के संपर्क में आने के लिए कुतूहल उत्पन्न हुआ। उस समय उनकी आयु थी ही कितनी ? वहुत होगी तो वारह-तेरह वरस की होगी। छुटपन में स्कपजे शहर के स्कूल में क्लास में यूगोस्लाविया के जेसुइटों की चिट्ठियाँ पढ़कर सुनायी जाती थीं। उन सव चिट्ठियों में जेसुइट कलकत्ते की वातें लिखते थे। टेरेसा के किशोर मन में उस समय से ही कलकत्ता शहर का चित्र तैरना शुरू हुआ। यूगोस्लाविया के जेसुइट उन दिनों कलकत्ता में काम करते थे। भावी जीवन का पथ अनुसंधान करने के लिए वारह वरस की आयु क्या कम नहीं होती ? प्रेम के संसार में आयु के कमोवेश होने का कोई अर्थ नहीं होता।

माँ-भाई-बहन के संसार में वे अच्छी तरह थी। अचानक इस पथ पर क्यों आयीं? और अगर आयी ही, तो सात समुंदर तेरह नदी पार कर यहाँ, इस कलकत्ता में ही क्यों आयीं? जुलूसों के शहर, दु स्वप्नों के नगर ने उन्हें किस प्रकार आकर्षित किया?

"सब उनकी इच्छा है। इट इज़ ए कॉल फ्राम हिम," बड़े सहज भाव से माँ टेरेसा ने जवाब दिया। आत्म-प्रचार-विमुख यह महान महिला अतीत को घसीटकर नहीं लाना चाहती। बात करते-करते माँ का मुसकराता चेहरा मानो कहीं खो गया। क्षण-भर के लिए अपने में चला गया। जादू या किसी अलौकिक घटना पर विश्वास न रहने पर भी सन् 1946 का दस सितंबर का दिन उनके मन के रत्नगृह में मृत्युपर्यंत स्मरणीय रहेगा। यह दिन उनके लिए 'इन्सपायरेशन डे,' 'डे ऑफ़ डिसीज़न' के रूप में गिनने योग्य है। इसके सत्रह बरस पहले सन् 1928 में मात्र अठारह बरस की आयु में शिक्षक का काम लेकर वे कलकत्ता आयी।

इंटाली के सेंट मेरी स्कूल में ही माँ टेरेसा ने अध्यापन का काम शुरू किया। इंटाली लोरेटो से लगे हुए इस स्कूल में वे अठारह बरस तक पढ़ाती रहीं। भूगोल पढ़ाती थीं। कई बरस तक अध्यक्ष का काम भी इसी स्कूल में किया था। बाद में लोरेटो के शिक्षक के काम में वे नियुक्त हुईं। इस लोरेटो स्कूल में शिक्षण के समय माँ टेरेसा के जीवन में दूसरी बड़ी घटना हुई। लोरेटो की ननों के साथ परोक्ष रूप से युक्त 'डॉटर्स ऑफ़ सेंट ऐन' का भार उन्हें मिला। सेंट मेरी स्कूल की दीवार के बाहर मोतीझील बस्ती थी। हाँ, इसी बस्ती में माँ टेरेसा ने सबसे पहले दरिद्रता से साक्षात्कार किया।

दरिद्रनारायण की सेवा में उनका मन रो उठता। स्कूल की आधी छुट्टी के समय वे बीच-बीच में सामने की मोतीझील बस्ती में चली जाती। कच्चे घरों के आँगन में बैठकर लड़के-लड़कियों के सुख-दुख की कहानियाँ सुनतीं। लौटकर क्लास में बैठकर दरिद्र पिता-माता की निष्पाप संतानों की दुख-दुर्दशा का चित्र उनकी आँखों के आगे तैर जाता। पढ़ाना समाप्त करके छात्राओं को बुलाकर कहती, "तुम घर से रोज़ आधी छुट्टी के लिए खाना लाया करो। सप्ताह में एक दिन का खाना क्या तुम सामने की बस्ती में रहने वाले लड़के-लड़कियों को नहीं दे सकते हो?" माँ की बात पर सभी हाथ उठाकर सहमति प्रकट करते। दिन-पर-दिन यह सारा दृश्य देखने के बाद उनके भीतर और बाहर प्रबल उथल-पुथल उत्पन्न हो गयी। मानो किसी ने हृदय के द्वार पर थपकी दी हो। वे फिर रुक न सकीं। बड़े दिन से पहले ट्रेन पर दार्जिलिंग जाने के दौरान उनका मन उलट-पलट हो गया। ऐड्रियाटिक की विशालता और हिमालय का विराटत्व—इन दोनों के सम्मिश्रण से गठित उनके देह-मन में एक परिवर्तन का ज्वार उठा। वही दिन उनके निर्णय लेने का दिन हुआ।

चार

जैसे मुझे किसी ने पुकारा हो। ट्रेन भागी जा रही थी। चारों ओर चार मनोरम पर्वतमालाओं को पीछे छोड़ती हुई गाड़ी बढ़ती जा रही थी। इसी के बीच अंतर के अंतःस्थल में वह आह्वान-वाणी सुनने को मिली। "आई हर्ड द कॉल टु गिव अप ऑल, ऐंड फ़ॉलो हिम टु द स्लम्स टु सर्व हिम अमंग्स्ट द पूअरेस्ट ऑफ़ पूअर।"

माँ ने दार्जिलिंग जाने की राह में ट्रेन में, सन् 1946 के दस सितंबर की तारीख़ को आह्वान-वाणी सुनी थी। और उसी शैलशिखर पर, हिमालय की शांत निर्जन गोद में उसी तारीख़ के ठीक पैंतीस वरस पहले सन् 1911 की 13 अक्तूबर को शुक्रवार के सवेरे भगिनी निवेदिता देह त्यागकर चिर-निद्रा में खो गयी थीं। महाप्रस्थान के समय निकटवर्ती समझकर उस दिन सवेरे अपनी सबसे अधिक प्रिय रुद्रस्तुति का पाठ किया, "असतोमा सद्गमय, तमसोमा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय। अविरावीर्य एधि।"—असत् से हमें सत्य की ओर ले चलो, अज्ञानांधकार से हमें प्रकाश की ओर ले चलो, मृत्यु से मुझे अमृत की ओर ले चलो, स्वयं प्रकाशित परब्रह्म, मेरे निकट ज्योतिर्मय रूप में प्रकट हो। उपनिषद् की यह दिव्यवाणी उच्चारण करते समय अपने अंतर का आनंद उनके मुख पर दीप्त हो गया था।

निवेदिता ने दिव्यवाणी का उच्चारण किया और माँ टेरेसा ने दरिद्रतम मानवों की सेवा में आत्म-समर्पण करने के लिए दिव्यवाणी सुनी। अंतर के अंतः-स्थल में उसे अनुभव किया। किंतु स्कूल की शिक्षिका के लिए इस प्रकार से आत्म-समर्पण संभव न था। दार्जिलिंग जाने वाली ट्रेन के डिब्बे में बैठकर सुनी आह्वान-वाणी पर माँ ने ध्यान दिया, पुकार सुनी। मात्र दो वर्ष में सन् 1948 के बीचों-बीच माँ टेरेसा ने मिशन के अधिकारियों से लोरेटो छोड़कर चले आने की अनुमति माँगी। आवेदन-पत्र में वे अपने मन की इच्छा प्रकट करना न भूलीं। किसी बड़े आदमी के संपर्क में आना अथवा किसी बड़े काम का दायित्व लेकर विदेश जाना, अथवा अन्य कोई महत्वपूर्ण वात न थी। तब वात क्या थी? शहर की दीन-दरिद्र वस्तियों के रहने वालों के साथ वे मिल जाना चाहती थीं। उन्हें प्यार करना चाहती थीं। सेवा के माध्यम से अपने को आनंदित करना चाहती थीं। आनंद पहुँचाना चाहती थीं यीशु को, यीशु के मन को। इसी के लिए प्रार्थना-पत्र था।

शहर के केंद्रविंदु में लोरेटो स्कूल की चहारदीवारी से घिरा सुंदर उद्यान, शांतिमय परिवेश उन्हें मुक्ति का स्वाद न दे सका। भगवान का नाम लेकर केवल अपने को, अपने जीवन को पवित्र करना ही मनुष्य का मुख्य लक्ष्य नहीं है। कलकत्ता का जन-जीवन, विशेष रूप से लाखों ग़रीब बस्ती के रहने वालों के दुख-

दारिद्रय ने उनके कोमल हृदय पर गहरा प्रभाव डाला।

बचपन में अंग्रेज़ी पुस्तक में पढ़ी 'द लेडी विद द लैंप' रचना याद आयी। फ्लोरेंस नाईटिंगेल के जीवन पर आधारित यह प्रबंध मन पर एक गंभीर अनुभूति उत्पन्न करता। स्कूटरी नाम की किसी जगह का नाम हममें से बहुतों ने सुना ही नहीं है, फिर भी वहाँ के अस्पताल की तसवीर जैसे कि हम अपनी आँखों के आगे देख सकते हों। क्रीमिया के युद्ध में घायल सैनिकों के झुंड-के-झुंड वहाँ लाये जाते थे। चारों ओर घायल सैनिकों की चीख-पुकार, एक बूँद जल की आशा में मृत्यु-पथ का यात्री कोई सैनिक तड़प रहा था। इस हालत में कोई-कोई तो मृत्यु की गोद में चले गये। कुछ मामूली चिकित्सक और सेविकाएँ अथक परिश्रम कर रही थीं। इनमें ही खड़ी थीं फ्लोरेंस नाईटिंगेल—ममता, सेवा और सहनशीलता की प्रकाशमान प्रतीक। गहन रात्रि में जब सभी विश्रामरत थे, उस समय भी उसकी आँखों में नींद नहीं थी। अनन्द्र प्रहरी की भाँति वे दीपक लिये घूम-घूमकर देख रही थीं, वहाँ कौन यन्त्रणा से कातर सैनिक सेवा की प्रतीक्षा में है? कल्पना का यह चित्र हमारे मन में एक पवित्र भाव उत्पन्न कर देता। अपने चारों ओर की धरती सहसा और भी अच्छी लगने लगती।

फ्लोरेंस नाईटिंगेल को हमने इतिहास के पन्नों से पहचाना। लेकिन हमारा बड़ा सौभाग्य है कि सेवाधर्म के क्षेत्र में उनकी बाद की एक महिमामयी को समसामयिक काल में अपने बीच पाया है। सोचने में आश्चर्य होता है कि वे हमारे देश की महिला नहीं है। फ्लोरेंस नाईटिंगेल ने जिस वर्ष शरीर त्याग किया उसी वर्ष अर्थात् 1910 ई० की 27 अगस्त की तारीख को सुदूर युगोस्लाविया के स्कपजे शहर में एक अलबेनियन परिवार में माँ टेरेसा ने जन्म लिया। और मात्र अठारह वर्ष की उमर में मिशनरियों के काम से गंगा-तीर के प्रायः तीन सौ बरस पुराने, जॉब चार्नक के इस शहर में चली आयी।

अनाहार, अनादर और उपेक्षा में जो तिल-तिल कर घुलकर मर रहे हैं उनके पास पहुँचने के लिए ही वह आवेदन था। रोम भेजने के साथ ही प्रार्थना-पत्र स्वीकृत हो गया। पिंजरे में बंद पक्षी को मुक्त आकाश का स्वाद पाने पर जो महसूस होता है, टेरेसा का जीवन भी उसका अपवाद नहीं है। मात्र अठारह बरस की उम्र में सुदूर युगोस्लाविया से कलकत्ता लोरेटो स्कूल की शिक्षिका के रूप में चली आयी। तब तक यह पश्चिमी बंगाल बनकर, उनका स्वदेश, अपनी भूमि बन चुका था।

माँ से पूछा, "क्या आपने भारतीय नागरिकता ग्रहण की है?"

"निश्चय ही ग्रहण की है। आई ऐम ऐन इंडियन बाई च्वायस ऐंड यू आर ऐन इंडियन बाई ऐक्सीडेंट।" माँ का प्रतिभावान जवाब था। कलकत्ता में रहने के कई बरस बाद माँ ने अपनी इच्छा से भारतीयता स्वीकार की थी।

पाँच

प्रार्थना-पत्र तो मंजूर हो गया। लेकिन कहाँ जाकर रहेंगी, क्या खायेंगी? सब कुछ अनिश्चित था। 'कि रबे आर कि रबेना, कि हँबे आर कि हँबे ना, ओ रे हिसावी—ए संसारेर माझे कि तुइ तोर भावना मिटावि'[1]—कवि का यह कथन याद कर या, मालूम नहीं, सहाय-संबलहीन युवती मेरी टेरेसा किस तरह मदर टेरेसा वन गयीं! वह एक आश्चर्यजनक कहानी है।

ईश्वर की अनुभूति से आरंभ कर माँ टेरेसा को जीवन में सब कुछ मुक्त रूप से मिला। खिड़की के दरवाज़ों से कहीं जाने के पक्ष में वे नहीं हैं। उनका कहना है, पिछवाड़े के दरवाज़े से जाना तो जाना ही नहीं होता है। उसका एक दूसरा नाम पिछड़ जाना है। सन् 1928 के अगस्त के महीने में माँ टेरेसा ने कलकत्ता आने के वाद लंबे सत्रह बरस जहाँ विताये, जिन अध्यापिका-छात्राओं के साथ दिन के-वाद दिन, महीने-के-वाद महीने, बरस-के-वाद बरस वातचीत की, सुख-दुख की बातें की, जीर्ण वस्त्र की तरह लोरेटो के वे रंग-विरंगे दिनों का मोह त्याग कर चली आयीं।

अछूत, गंदी कहकर जिस मेहतरानी से हममें से बहुत लोग वचकर निकलने के अभ्यस्त हैं, उसी मेहतरानी की पोशाक, नीले किनारे की सफ़ेद साड़ी, उन्होंने अपने शरीर पर पहनी। 'के बोले तोमारे बंधु अस्पृश्य अशुचि, शुचिता फिरिछे सदा तोमारि'[2]—कवि की इस उक्ति को माँ टेरेसा ने प्रत्येक मर्म में प्राप्त किया है। भारतीय नारी के दृष्टिकोण और मनोभाव के संबंध में भी उनका जानकारी से उपलब्ध ज्ञान है। कैथोलिक संन्यासिनियों में उन्होंने ही पहले भारतीय नारी की पोशाक साड़ी को ही अपने मिशन की पोशाक के रूप में ग्रहण किया। और क्या केवल पहनने के कपड़े ही? भारतीय आदर्श में रहना-खाना भी मिशनरीज ऑफ़ चैरिटीज़ की अन्यतम विशेषता है। फ़र्श पर घुटने मोड़कर बैठना, बाल्टी में पानी लेकर फ़र्श पर हाथ पटक-पटककर गंदे कपड़े निचोड़ना, हाथ की मुट्ठियों से भात, दाल, तरकारी, दही—यह सब खाना, सभी माँ टेरेसा के कल्याण में है। यह उनका ही रिवाज है। भारत के ग़रीब जन-साधारण में काम करने के लिए पूरी तरह भारतीय बनना पड़ेगा—माँ टेरेसा इस बात पर पूरी तरह से विश्वास करती हैं। वही तो होगा! वे हमारी माँ हैं न!

उन्होंने नीली साड़ी के ऊपर क्रूस का चिह्न टांक लिया है। इस तरह अभाव,

---

1. क्या रहेगा और क्या नहीं रहेगा, क्या होगा और क्या नहीं होगा, अरे हिसाब-किताब करने वाले! इस संसार में क्या तू अपनी चिंता दूर करेगा?
2. मेरे बंधु! तुमको अछूत गंदा कौन कहता है? शुचिता तो सदा तुम्हारे पीछे भागती रहती है।

ग़रीबी, दारिद्र्य का जीवन माँ ने चुन लिया। केवल अनुभूति अथवा आवेग से परिचालित होकर मंज़िल पर नहीं पहुँचा जा सकता है। इसीलिए पहले ही चिकित्सा, दवा-दारू के संबंध में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने की ओर माँ ने ध्यान दिया। सेवा करने के मार्ग पर चलने के लिए प्यार के साथ-साथ इस ज्ञान की भी अत्यन्त आवश्यकता होती है।

पीड़ितों की सेवा भारत में नयी नहीं है। ईसा के पहले तीसरी शताब्दी में सम्राट अशोक के राज्यकाल में पहले-पहल पीड़ितों की सेवा के लिए अस्पताल बने। ईसापूर्व की चौथी शताब्दी में राजा बुद्धादित्य ने भी 'वेज्जसाला' नाम से रोगियों की सेवा के लिए एक प्रकार का प्रतिष्ठान स्थापित किया। सम्राट का आभिजात्य दूर कर अपने हाथों से रोगी और दुखी लोगों की सेवा का भार ग्रहण कर ईसवी सप्तम शतक में सम्राट हर्षवर्धन ने अपने साम्राज्य के भिन्न-भिन्न केंद्रों में रोगियों की चिकित्सा की व्यवस्था की। बारहवें शतक में राजा पराक्रम-बाहु ने आधुनिक अस्पतालों के समान स्वास्थ्य-केंद्र के निर्माण के काम में अपना कौशल प्रदर्शित किया। मिस्र के कैरो नगर में सुल्तान अल मसूर ने 1283 ईस्वी में जो अस्पताल बनवाया वह बहुत ही ऊँचे स्तर का है। ईसा मसीह के परवर्ती समय में ईसाई संसार के तमाम स्थानों पर सेवा के उद्देश्य से अस्पतालों की स्थापना हुई। महामान्य पोप के निर्देश से विभिन्न चर्चों ने इन दातव्य संस्थाओं के निर्माण में योग दिया। इतिहास के पृष्ठों से इन सब उद्धरणों का उल्लेख करने का केवल एक कारण है, और वह यह दिखाना है कि सेवा के आदर्श से संचित होने की घटना प्राचीन काल से ही चली आ रही है। प्रत्येक काल में इसका रूप बदला है। किन्तु, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि माँ टेरेसा-सी महान महिला का एक युग में एक से अधिक जन्म नहीं होता।

उन्होंने लोरेटो की मँहगी मँहगी पोशाक-ओशाक उतार डाली। 'Poverty is freedom'—ग़रीबी ही स्वाधीनता है—इस सत्य पर विश्वास करने वाली माँ टेरेसा नर्सिंग की ट्रेनिंग लेने पटना गयीं। वहाँ अमेरिका मेडिकल मिशनरी सिस्टरों से सब बताया गया। ट्रेनिंग समाप्त होने पर वे लौट आयीं। लौट आयीं अपने प्यार के नगर इस कलकत्ता में।

छः

माँ ने धर्म के अनुशासन को कभी अस्वीकार नहीं किया। किसान जिस तरह आबोहवा को मान लेता है, समुद्र में तूफ़ान उठने पर मल्लाह को जिस तरह

उसका सामना करना पड़ता है, उसी तरह माँ भी धर्म से संबद्ध सब बातों को मानने की अभ्यस्त हैं। वे क्रांतिकारी बातें नहीं करतीं। दो-एक बरस बाद जब वे लोरेटो स्कूल से कलकत्ता की सड़कों पर निकल पड़ीं तो उनकी जेब में सहारे के लिए केवल पाँच रुपये थे। उन्होंने सियालदह के पास एक पुराने मकान में आश्रय लिया। वहीं खाना-पीना भी होता था। कई परित्यक्त शिशुओं को लेकर यहीं उनके प्यार की दुनिया शुरू हुई।

पहला बरस बड़े कष्ट में बीता था। कमरे में जगह की कमी थी। दाल-चावल की भी कमी थी। अनिद्रा में न रहने पर भी उन्हें कभी-कभी अनाहार ही काटना पड़ा था।

माँ का कहना है, "हम एक दिन या एक बेला खाये बिना उपवास करते हैं, उससे ही कितनी समवेदना होती है। और जो दिनोंदिन बिना खाये या आधा खाये रहते हैं, उनके मुंह में दो मुट्ठी अन्न दे देना तो दूर की बात, जो बिना कुछ ख़र्च किये संभव हो सकता है, वह मौखिक सहानुभूति भी क्या हम देते हैं?" प्यार—एकमात्र प्यार को ही जिन्होंने जीवन के सर्वश्रेष्ठ मूलधन के रूप में चुन लिया है उन्हीं के लिए उपेक्षितों में ख़ाली हाथों कूद पड़ना संभव है। मानव को प्यार न कर सकने पर जीवन कभी भी सर्वांग सुन्दर नहीं हो सकता। अकृत्रिम प्यार के विनिमय में ही किसी आदमी में स्वार्थवश घृणा करने का अधिकार उत्पन्न होता है। वह कभी अच्छा नहीं चुनता। किसी भी हालत में किसी को घृणा करने का अधिकार नहीं है। बहुतों का प्रेमी-प्रेमिका के 'प्रेम और घृणा' के संबंध में भी वही मत है।

माँ को 1948 में इक्कीस दिसंबर को सियालदह के पास एक बस्ती में स्कूल खोलने की अनुमति मिली। दूसरे बरस फ़रवरी के जाड़ों की एक सुबह उन्हें मौलाली के पास एक घर में जगह मिली। प्राची सिनेमा छोड़कर मौलाली के मोड़ पर जाते हुए दाहिनी पटरी पर 'डेन्टल कॉलेज' है। इसी डेन्टल कॉलेज से मिलती हुई जो गली राजा सुबोध मल्लिक स्क्वायर में जाकर मिलती है उसी का एक मकान माँ का ठिकाना हुआ। मकान के मालिक हैं माइकेल गोमेज़। मकान तलाश करने में बहुत तकलीफ़ न हुई। लकड़ी की सीढ़ी चढ़कर तीसरी मंज़िल पर चढ़ते ही एक अधेड़ महिला से भेंट हुई। परिचय देते ही वह विवाहित महिला बोलीं, "माइकेल गोमेज़ मेरे पिता हैं। बैठिये, बुला देती हूँ।' साड़ी का आंचल पीछे से खींचकर महिला बिजली की तेज़ी से पास के कमरे में घुस गयीं। कमरे की दीवार पर माँ की तसवीर टँगी थी। पास ही क्रास पर चढ़ी ईसा की तसवीर थी। थोड़ी दूर पर स्वर्गीय प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की एक प्रतिकृति थी—बहुत दिन पुरानी।

कुछ देर बाद माइकेल आये। उस समय सवेरे के नौ बजे थे। आने का कारण

जानकर परिचय देते हुए पचास से ऊपर के यह सज्जन बोले, "देखिये, मदर हमारे यहाँ ही रहती थीं। हम लोग उनके तमाम सुख-दुखों के साथी हैं। भूलने की बात नहीं, लेकिन उन दिनों की बातें तो हम आपको बता न सकेंगे। मदर खुद भी नहीं चाहतीं कि उनके कष्टों के दिनों के बारे में किसी को मालूम हो।"

वास्तव में, माँ के लिए सुख-दुख में कोई अंतर नहीं है। दुख में से ही तो आनन्द का उद्गम होता है। इसीलिए तो शोकगाथाओं के गीत ऐसे मधुर होते हैं। सुख और आनन्द में अन्य ही काम्य होता है।

गोमेज की लड़की से ही दो-एक दिनों की अलग घटनाओं को सुना। जून-जुलाई का महीना होगा। भद्र महिला को मन् नहीं याद आया।...बाहर बहुत वर्षा हो रही थी। रात को दस के लगभग मदर भीगी-भीगी ठिकाने पर लौटीं। आधे घंटे बाद मदर ने मेरे पिता के पास एक पुर्जा भेजा। पुर्जे में माँ ने लिखा था, "गोमेज, घर में एक दाना चावल नहीं है। और अभी दो भूखे लोग आये हैं। तुम अगर कुछ मामूली-सा चावल उधार दे दो तो दोनों मेहमानों की भूख दूर की जा सकती है।"

एक-दो दिन की नहीं, रोजाना की यही घटना थी। वे कभी विचलित नहीं हुईं। राह चलने में रुकावट तो आती ही है। इसीलिए कहा जाता है कि पतवार छोड़कर वे रोने नहीं बैठ गयी हैं। जीवन गुलाब के फूलों की सेज नहीं है, इस सचाई को मानकर ही हर ओर उपलब्धि कर आगे बढ़ना होगा।

माइकेल गोमेज का यह मकान बहुत दिनों पुराना है। पिता से मिला है। सन् 1947 में देश-विभाजन के समय गोमेज के चार भाइयों में दो भाई पूर्वी पाकिस्तान(आधुनिक बांग्ला देश)में चले गये। कलकत्ता के आर्कबिशप की सलाह से ही वहाँ के ईसाइयों की सेवा के उद्देश्य से आर्कबिशप ने उन दोनों से जाने को कहा था। बड़े भाई मदर टेरेसा को जानते थे। उसका कारण था कि उनकी लड़की इटाली में पढ़ती थी। मदर वहाँ पढ़ाती थीं। किन्तु, माइकेल गोमेज उस समय भी मदर को नहीं पहचानते थे।

गोमेज की माँ एक बार बहुत बीमार हो गयी। फादर हेनरी ने अंतिम क्षण समझकर 'भगवान की कृपा-प्राप्ति की राह' या वैसा ही कुछ पढ़कर सुनाया। इसी समय फ़ादर ने उनसे एक छोटा-सा मकान तलाश करने को कहा (छप्पर की कोठरी पर भी आपत्ति न थी)। मदर टेरेसा के लिए कमरे की जरूरत थी। वे पटना में हैं। कलकत्ता में आकर रहने के लिए ही इस तरह की कोठरी की जरूरत थी। 'प्रासाद नगरी' कलकत्ता में आस-पास जो ग़रीबी का स्वरूप हम लोगों की आँखों के आगे हर रोज तैरता है उसमें काम करने के लिए माँ पटना से सीधे कलकत्ता आ रही हैं। किसी अभिजात इलाक़े में रहने की माँ की इच्छा नहीं थी। वे ग़रीब बस्ती में ही रहना चाहती हैं।

माइकेल गोमेज़ की लड़की उस समय बहुत छोटी थी। फ़ादर के मुँह से यह बात सुनकर साथ-ही-साथ बोली, "हमारी ऊपरी मंजिल खाली पड़ी है। क्या आप एक बार देखेंगे ?" फ़ादर बोले, "हाँ, जरा देखना चाहता हूँ।" सब कुछ देखकर फ़ादर बोले, "यह तो बहुत बड़ा कमरा है। मदर कोई छोटा-सा कमरा चाहती हैं।" माइकेल के दोनों भाइयों के चले जाने के बाद यह कमरा ख़ाली पड़ा था। असबाव वगैरह छोड़कर इस कमरे में और कुछ नहीं था। मदर टेरेसा इसी कमरे में आयीं। साथ में वे एक लकड़ी का संदूक और एक पैकिंग केस ले आयीं। इसी से मदर की डेस्क बनी। वे एक सूटकेस और एक कुर्सी भी ले आयीं। उनकी संपत्ति में यही था। जब जिस सामान की जरूरत होती तो माइकेल गोमेज़ बड़ी खुशी से उसे माँ को दे देते। घर का किराया तो दूर की बात, खाना-पीना-सामान —किसी का भी माइकेल ने मदर से किसी दिन पैसा-कौड़ी नहीं लिया। किन्तु आज से तीस बरस पहले सियालदह के पास प्राची सिनेमा के पीछे की अँधेरी गली के इस मकान में ही जो ज्योति की शिखा प्रज्ज्वलित हुई वही अब भौगोलिक सीमाएँ तोड़कर देश-विदेश में फैली है। इसीलिए इस गोमेज़-परिवार का यह अवदान चिरस्मरणीय रहेगा। लेकिन आँखों पर चश्मा लगाये, सामान्य पोशाक के इस अधेड़ आदमी के चेहरे पर ऐसा कोई भाव नहीं था जिससे लगता कि वे इतने बड़े एक महान कार्य में उसके जन्म के समय से ही संलग्न हैं।

इसी घर में धीरे-धीरे माँ का काम-काज बढ़ने लगा। एक दिन माँ ने माइकेल के पास एक पुर्ज़ा भेजा। उसमें लिखा, "एक सिस्टर चेचक से रोगाक्रांत होकर यहाँ आ रही हैं। उनके लिए क्या एक अलग कमरा देना संभव होगा ?" सुनते ही प्रबंध हो गया। इसके बाद सामने आयी बाथरूम की असुविधा। दो बाथरूम थे। और इन दो बाथरूमों का उपयोग करने वालों की संख्या थी तीस। एक दिन सेंट टेरेसा के लोग बाँस के टट्टर और ईंटें ले आये। छत पर नहाने के लिए कुछ जगह का इंतजाम हुआ। लड़कियों ने बहुत खुश होकर छत पर के इस बाथरूम का उपयोग करना शुरू किया।

अब वे दिन नहीं रहे। आचार्य जगदीश बसु रोड पर बड़ा मकान है। बहुत लोग हैं। यहाँ सिस्टर खेल-कूद सकती हैं। लेकिन सब चीज़ों के पीछे है 'शृंखला' नाम की कुंजी। घंटा बजने के साथ ही हर रोज सवेरे अपने-अपने काम से बाहर निकलना पड़ता, प्रार्थना पर बैठना पड़ता। वे सब दिन बड़े कष्ट के थे। काम भी करना पड़ता और उसके साथ पढ़ने-लिखने का दबाव। एक बार काम में लग जाने पर घर जाने की बात मुँह से नहीं निकाली जाती। मदर इनमें कॉलेज के लड़के-लड़कियों को पढ़ातीं। मुझे सिस्टर गर्ट्रूड की बात याद आती है। सिस्टर गर्ट्रूड इस वक़्त यमन में हैं। मैट्रिक की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर उन्होंने माँ के काम में साथ दिया। माँ ने उनसे तब डॉक्टरी पढ़ने को कहा। लेकिन आवश्यक

नंबर न प्राप्त करने के कारण वे आई० एस-सी० में भर्ती हो गयी। और उस समय माँ को एक डॉक्टर की सख्त जरूरत थी।

ऐसे भी दिन बीते हैं जब कि माँ को खाने का ठिकाना भी नहीं था। दरवाजे-दरवाजे भीख माँगकर भूख मिटानी पड़ती। किन्तु भगवान सदा उनके पास आकर खड़े रहे। खाना किसी-न-किसी तरह उनको मिल ही जाता था। माँ ने जब पहला स्कूल स्थापित किया उस दिन एक भले आदमी माँ को देने के लिए कुछ रुपये लेकर आये। रुपया किस काम के लिए है, यह जानना चाहने पर भले-मानस ने माँ से कहा, "स्कूल के लिए।" धन-प्राप्ति के स्वीकृति स्वरूप भले-आदमी को रसीद दिये जाने पर वे बोले, "मैं फिर आऊँगा।" लेकिन सच यह है कि वे फिर नही आये।

इटाली लोरेटो के पास मोतीझील बस्ती मे पहला स्कूल स्थापित हुआ। उसके चारो ओर झोंपड़ियाँ थी। बीच मे एक टुकड़ा खाली जगह पर शुरू हुआ माँ का स्कूल। ब्लैक बोर्ड, कुर्सी, मेज, तिपाई—कुछ भी तो न था। और शांति निकेतन का-सा आश्रम का परिवेश भी वहाँ न था। पेड़-पौधे तो दूर की बात, कहीं भी हरियाली का चिह्न न था। माँ ने एक मजदूर को बुलाया। इस मजदूर ने फावड़े से सूखी घास को उखाड़ फेंका। जमीन पर ही एक पतली डंडी से माँ ने एक-एक कर अक्षर लिखना शुरू किया। माँ ने पहले दिन बँगला भाषा के अक्षर सिखे। एक प्रार्थना सुंदर ढंग से पढ़ी और अँग्रेजी कविता-पाठ से आरंभ हुआ उनका शिक्षक का एक नया जीवन। स्कूल खुलने का समाचार जल्दी फैल गया था या नहीं, यह तो नहीं मालूम (उसका कारण है कि ऐसे समाचार हमारे देश के अखबारों में बहुत प्रकाशित नहीं होते), लेकिन दूसरे ही दिन एक सहृदय व्यक्ति ने एक कुर्सी-मेज माँ को दान कर दी।

शुरू से ही सड़क पर किसी मुमूर्षु आदमी को देखते ही माँ बिना सोच-विचार किये सेवा करने लगतीं। उसका कारण था कि उस समय तो कहीं ले जाने लायक कोई जगह न थी। दवा आदि देकर कोई सहायता करेगा या नहीं, इस मामले में माँ गोमेज से पूछतीं। सेंट टेरेसा के फ़ादर ने आउटडोर डिस्पेंसरी के लिए एक कोना छोड़ दिया था। बीमारों के झुंड-के-झुंड ने आना शुरू किया। मेज-कुर्सी की तरह दवाएँ भी एक और व्यक्ति ने दे दी। उसके बदले में उन्होंने धेला भी नहीं लिया। माँ के काम में वे थोड़ी मामूली सहायता दे सकें, यह सोचकर ही भले आदमी खुश थे।

एक दिन माँ ने बरसात में एक आदमी को सड़क पर मरते देखा। रोजाना का श्रम होने पर भी इस घटना ने माँ के कोमल हृदय पर गहरा प्रभाव डाला। इसी से उन्होंने निश्चय किया कि जिस तरह भी हो मुमूर्षु लोगों का एक आश्रय-स्थल बनाना होगा। दो महीनों में स्थान ठीक हुआ। कालीघाट के काली मंदिर

के पीछे यह मकान तीर्थयात्रियों के ठहरने के लिए बना था। कलकत्ता के बाहर से जो तीर्थयात्री आते थे, वे जरूरत पड़ने पर यहाँ ठहरते थे। एक बड़े व्यवसायी इन तीर्थयात्रियों के लिए बिना मूल्य खाने-पीने की व्यवस्था करते थे। वे अकसर तीर्थयात्रियों को कपड़े भी बाँटते थे। लेकिन अंत में यह जगह जुआरियों का अड्डा बन गयी। धर्म के स्थान पर अधर्म होने लगा। इस जगह को पाने के लिए माँ को बहुत अड़चनों और मुसीबतों का सामना करना पड़ा था। यह भी एक आश्चर्यजनक घटना है।

पहले, जब काम शुरू किया था तो माँ की अवस्था मात्र पैंतीस की थी। 1948 ई० से आज तक उनके चेहरे में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ। उम्र के प्रभाव को हटाकर माँ देखने में वैसी ही हैं। बीच-बीच में चिंता में डूबी अवश्य दिखायी पड़तीं।

माँ का पहला काम था, शिक्षा का प्रसार। इसीलिए शुरू में ही एक स्कूल खोला। मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़ की सिस्टरों में सामान्यत: कोई अकेली बाहर न निकलतीं। किसी भी काम पर हमेशा दो साथ होकर निकलतीं। जब माँ के पास न कोई सिस्टर होती न कोई साथी, उस समय माइकेल गोमेज़ की लड़की या और कोई आत्मीय स्त्री माँ के साथ होती। सवेरे आठ बजे निकलतीं और बारह बजे लौटतीं। किसी-किसी दिन एक बज जाता। एक दिन माँ को लौटने में ज्यादा देर हो गयी। गोमेज़ की पत्नी बहुत चिंतित हो गयीं। जब माँ लौटीं तो सारा शरीर भीग गया था। अपनी बात न सोचकर बोलीं, "बेचारी लड़कियाँ भीग गयी हैं।" गोमेज़ की पत्नी द्वारा माँ की बात उठते ही माँ बोलीं, "बस्ती में जो दृश्य देखकर आयी हूँ उसकी तुलना में यह कुछ नहीं हैं।" बस्ती की एक टूटी कोठरी में एक महिला कंधे पर लड़के को लिये खड़ी थीं। लड़के को बुख़ार हो रहा था। महिला घुटनों तक पानी में खड़ी थीं। लड़के को बचाने के लिए सिर पर एनामेल का एक बर्तन हाथ में लिये खड़ी थीं। दो महीनों का किराये का रुपया बाक़ी हो जाने पर महिला को इस दुर्गति का सामना करना पड़ा था। और दो महीने का किराया आठ रुपये बाक़ी पड़ जाने के कारण भीषण वर्षा में मकान-मालिक ने अपने आदमियों को ले छत तोड़कर महिला को भगा दिया। लड़के को उस समय 104 डिग्री ज्वर था। माँ ख़बर पाकर परेशान हो गयीं। माँ बोलीं, "मैं अभी उस बस्ती में जाऊँगी। आठ रुपयों के लिए एक बच्चा पानी में भीगकर मर जायेगा?" महिला का मामूली-सा सामान वर्षा के पानी में डूब रहा था।

एक दूसरी घटना में सिस्टर लोग एक बच्चे को माँ के पास ले आयीं। लड़के के पेट में बहुत दर्द था। सिस्टरों ने बताया, "बाहर का सड़ा खाना खाने से यह तकलीफ़ हो गयी है।" माँ बच्चे के पास गयीं। उसके आगे बैठ गयीं, पूछा, "तुमने क्या खाया था?" सवेरे, शाम को, रात में उसके पेट में एक दाना भी नहीं गया

था। कल भी यही हालत थी, अर्थात उपवास था। भूख ही इस दर्द का एकमात्र कारण थी।

पहले तो अधिकतर काम माँ खुद ही करती थीं। काम करते-करते बीच-बीच में थक जाती। कभी-कभी माँ को बहुत खुशामद-दरामद कर सुलाया जाता। तीन बरस पहले सचमुच उन्हें नर्सिंग होम में जबर्दस्ती भरती कराया गया। उनका शरीर प्रायः टूट गया था। सिस्टर लोग भी घबरा गयी थीं। शरीर की दुर्बलता होने पर भी उनकी मानसिक शक्ति सदा ही अटूट रही। दूसरी तरह कहा जाये तो ईश्वर में उनका असीम विश्वास है। माँ के उस विश्वास, भक्ति में कभी कमी न आयी। एक बार दार्जिलिंग में माँ का एक पैर टूट गया। प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी उन्हें देखने गयीं। श्रीमती गांधी माँ और माँ के स्नेह के संसार—मिशनरीज ऑफ चैरिटीज की भक्त हैं। दिल्ली में प्रधानमंत्री मिशनरी ऑफ़ चैरिटीज के भवन में बीच-बीच में फ़ोन करती रहती हैं। श्रीमती गांधी के निवास-स्थान के बगीचे में तरह-तरह की साग-सब्जियाँ होती हैं। वह साग-सब्जी उस चैरिटी संस्था के काम में आयेगी या नहीं, यह जानने के लिए फ़ोन होता था। साथ-साथ दान के रूप में प्रधानमंत्री वह साग-सब्जियाँ भेज देतीं। इसकी एक और दिशा थी। एक दिन दिल्ली में एक मंत्री ने मिशनरीज ऑफ चैरिटीज के भारप्राप्त 'सुपीरियर' को एक नोट भेजा। उस नोट की विषयवस्तु थी, "अभी विदेश से सहायता के रूप में जो कम्बल आये हैं उनमें से चार कंबल उस मंत्री के मोटरचालक को दे दिये जायें।" भारप्राप्त 'सुपीरियर' ने नोट लेकर उसके पीछे लिख दिया, "यह कंबल दीन-दरिद्रों के लिए हैं।"

बांग्ला देश से 1971 ई० में लाखों व्यक्तियों ने कलकत्ता के बाहरी सीमांत अंचलों में आश्रय लिया। उसी समय अमेरिकी सेनेट के सदस्य एडवर्ड केनेडी कलकत्ता आये। सरकार ने सेनेटर एडवर्ड केनेडी के लिए एक कार्यक्रम बनाया। लेकिन वे स्वयं ही सब-कुछ देखना चाहते थे, और उन्होंने सीधे कैंपों को देखने की इच्छा व्यक्त की। केनेडी के साथ सरकारी अफसर और जिस प्रकार जन-प्रतिनिधि थे, उसी तरह कलकत्ता से रिपोर्टर, कैमरामैन भी उनके साथ गये थे। हमेशा हजारों लोग उन्हें घेरे रहते थे। इसीलिए वे अच्छी तरह से देख न सके। लेकिन वे भीड़ के बीच अचानक रुक गये। कॉलरा के रोगी के कपड़े साफ़ करने में एक सिस्टर व्यस्त थीं, और वे सिस्टर थीं : 'सिस्टर अग्नेस।' सिस्टर अग्नेस से हाथ मिलाने के लिए सेनेटर केनेडी ने हाथ आगे कर दिये। किंतु सिस्टर बोलीं, उनके हाथ गंदे हैं। केनेडी बोले, "वह जितने ही गंदे होंगे मैं उतना ही अपने को सम्मानित समझूंगा। आप जो काम कर रही हैं वह अतुलनीय है।" यह दृश्य माइकेल गोमेज की स्मृति में सदा जाग्रत रहेगा।

बांग्ला देश के विस्थापितों की असीम दुख-दुर्दशा देख कर माँ का हृदय रो

पड़ा। माँ ने निश्चय किया कि इनमें से ज्यादातर कमज़ोर और रोगियों के रहने के लिए एक स्थान तलाश करना पड़ेगा। सोचते ही काम शुरू हुआ। खोजते-खोजते अंत में उन्हें एक जगह का पता चला। यह था फलों का एक सुंदर बाग़। माँ ने उसका नाम रखा 'ग्रीन पार्क'—हरा उद्यान। बाग़ में बैठकर माँ ने उस बाग़ के मालिक से बातचीत की। दिन-भर बातचीत चलती रही। रात में जब सब लोग बगीचे से कलकत्ता लौट रहे थे तो उसी समय मालिक की पत्नी एक गिलास में नींबू का शरबत ले आयीं। गर्मी से सब थके हुए थे। माँ बोलीं, "हमको बाहर कुछ भी खाना मना है।" भलेमानस बोले, "माँ, मैं आपसे खाने को नहीं कह रहा हूँ। मैं आपसे यह शरबत ही पीने का अनुरोध कर रहा हूँ।" इसके बाद माँ ने गिलास को मुँह के पास ले जाकर चुस्की ली। उस समय रात के ग्यारह बजे होंगे। माँ दिन-भर तो निराहार रहीं ही, इतनी रात गये यह पहली बार जल-स्पर्श किया।

वक़्त पर ज़मीन मिल गयी। इसके पहले दिन एक टेलीग्राम मिला। टेलीग्राम में माँ को लिखा था: "एक प्लेन में एक अस्पताल का सारा सामान आ रहा है।" दूसरे दिन ही हवाई जहाज़ पहुँच गया।

एक बार मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज की सिस्टर ऐंड्रियस को एम० बी० बी० एस० की परीक्षा में स्वर्ण-पदक मिला। वे माँ के पास आयीं। उनको स्वर्ण-पदक दिखाया। माँ बोलीं, "सिस्टर, यह स्वर्ण-पदक तुम्हारे किस काम आयेगा?" सिस्टर ऐंड्रियस बोलीं, "मैंने कुछ सोचा नहीं है।" माँ बोलीं, "तुम्हें इस बारे में जरूर सोचना पड़ेगा। यह स्वर्ण-पदक तुम्हारे काम का नहीं हैं। यह बेमतलब है। तुम बाहर तो प्रैक्टिस करने जाओगी नहीं, या तुम अपने नाम के साथ एम० बी० बी० एस० (गोल्ड मेडलिस्ट) तो लिखोगी नहीं। तुम तो दीन-दुखियों के बीच काम करोगी। उनके लिए यह लिखने का कोई मूल्य नहीं है। कोई और इस स्वर्ण-पदक को ले सकता है। जाओ, और अधिकारी व्यक्ति से कह दो कि यह स्वर्ण-पदक तुम्हारे किसी काम का नहीं है।" यह बात सुनने के बाद सिस्टर ऐंड्रियस खुशी से वापस चली गयीं और स्वर्ण-पदक अधिकारियों को दे दिया। वह स्वर्ण-पदक परीक्षा में दूसरा स्थान पाने वाले छात्र के भाग्य में आया। एम० बी० बी० एस० के उस विद्यार्थी ने अपने चैंबर में स्वर्ण-पदक टाँग दिया।

माँ के संसार में सिस्टर अग्नेस, सिस्टर क्लेयर के समान मानसिक ऐश्वर्य से समृद्ध और भी कई सिस्टर हैं। माँ के न रहने पर यही तो मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़ की अभिभावक बनेंगी। माँ इस बात को अच्छी तरह समझती हैं और इसी कारण सिस्टरों के प्रति उन्हें इतना स्नेह है। रोगी बच्चे को स्वस्थ करने के लिए माता का मन जिस तरह तड़पता है उसी तरह सिस्टरों के संपूर्ण विकास के मार्ग में कोई बाधा दिखायी पड़ने पर भी मदर को बेचैनी होने लगती है। इसका कारण

है कि माँ अच्छी तरह जानती हैं कि सिस्टरों के काम काज के अच्छे-बुरे से मिशनरीज ऑफ़ चैरिटीज का भला-बुरा प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है।

उसी साल, 1949 ई० का उन्नीस मार्च का दिन भी याद रखने योग्य है। कई बंगाली युवतियाँ स्वयं प्रवृत्त होकर माँ के पास आयी। युवतियाँ माँ की ही विद्यार्थी थी, सिस्टर अग्नेस का पहले का नाम सुभाषिणी दास था। सिस्टर अग्नेस के बाद एक बरस में और भी कई युवतियाँ शामिल हुईं। ये थीं सिस्टर क्लेयर (किरण दत्त), सिस्टर बर्नार्ड (रोज़ारिओ), सिस्टर डोरोथी फ्रांसिस (गोमेज), सिस्टर गर्टूड (गोमेज), सिस्टर लेटीसिया (माइकेल गोमेज की दीदी की बेटी), सिस्टर फ्रांसिस्का (रोज़ारिओ), सिस्टर फ्लोरेंस विमेंट (गोमेज), सिस्टर मार्गरेट मेरी (रेजिना गोमेज)—ये सभी 1949-50 ई० में सेवा के आदर्श से प्रेरित होकर माँ टेरेसा के काम में सम्मिलत हुईं।

बहुत आँधी-तूफान झेलकर इन सिस्टरों ने आज माँ के निर्देश में अनेक जगहों पर दायित्वपूर्ण पद का भार सँभाला है। नि:स्वार्थ सेवा के मंत्र में दीक्षित वे नीरव काम करती रही हैं। 1951 ई० से, आज से उनतीस बरस पहले, मिशनरीज ऑफ़ चैरिटीज का दीपक जल उठा। अंधकार से प्रकाश की ओर चलने के पच्चीस बरसों के निरंतर कार्य ने मदर टेरेसा को सफलता की चोटी पर पहुँचा दिया।

सात

कोई भाषण, वक्तव्य, पत्रकार-सम्मेलन नहीं। यह सब उन्हें पसंद नहीं है। जीवन को अंतर्मुखी बना लेने में ही सुख का स्वाद निहित है। माँ पीड़ितों और अवांछित लोगों में मिल गयी। ईश्वर प्रजापीड़क नहीं हैं—वे प्रजापालक हैं। धर्म आत्मपीड़न नहीं होता है—अपनी उन्नति का साधन, अपना आनंदवर्द्धन ही धर्म है। ईश्वर में भक्ति, मनुष्यों के प्रति प्रेम, और हृदय में शांति ही धर्म है। भक्ति, प्रेम, शांति—इन तीन शब्दों में जो वस्तु चित्रित हुई उसकी मोहिनी मूर्ति की अपेक्षा संसार में और क्या है? माँ उसी मन को लेकर आगे बढ़ीं। कुटियों में, बस्तियों में दरिद्र मनुष्यों से प्रेम का संबंध स्थापित किया।

"इतने बड़े शहर में आप अकेली? ऐसे रहने में आपकी भूतपूर्व छात्रा बिलकुल निरीह एक बंगाली लड़की, सिस्टर अग्नेस है। यही तो आपकी इस समय सहकर्मी है। इस बड़े भारी कर्मयज्ञ का दायित्व लेकर क्या आपके मन में कोई दुविधा, द्वंद्व, या कोई आशंका नहीं होती?"

"न, कोई आशंका उत्पन्न नहीं होती।"

पैंसठ वरस की कल्याणमयी माँ ने वहुत धीरे और दृढ़ता से जवाव दिया। ज़रा रुककर वोलीं, "मैं जानती हूँ। ईश्वर ने ही मुझे इस पथ पर चलाया है। यह विश्वास मेरे हृदय में वहुत पहले ही हो गया था।" कम वातें। लेकिन माँ के मुख पर ये दो-चार वातें ही कैसी अच्छी लगती हैं! उनका कंठ-स्वर मुग्ध था। कभी-कभी एक ही मामूली-सी वात में शोक, प्रेम, आनंद की अभिव्यक्ति ऐसी मनोमुग्धकारी रहती कि वह लंवी वक्तृता में भी संभव न होता।

माँ ने ही तो कहा था, "मैं अगर सोचूँ कि यह सारे काम मैं ही करती हूँ तो जीवित अवस्था में न होने पर मेरी मृत्यु के वाद मेरे काम भी समाप्त हो जायेंगे। यही स्वाभाविक परिणति होती है। मेरा दृढ़ विश्वास है, भगवान ही हमारे द्वारा सव-कुछ करा लेते हैं। तभी तो 'पंचभूत' में मिल जाने पर भी काम की कभी मृत्यु नहीं होती। भगवान ही किसी और के द्वारा काम करा लेंगे।" मधुर श्यामा-संगीत के कलाकार स्वर्गीय पन्नालाल भट्टाचार्य के गान की पंक्ति—'सकलइ तोमारइ इच्छा, इच्छामयी तारा तुमि, तोमार कर्म तुमि करॅ माँ, लोके वॅले कॅरि आमि'[1]—यही है माँ के जीवनादर्श की मूल वात।

मानव के साथ मानव के प्राणों का संयोग-स्थापन प्रेम द्वारा ही संभव है। यह प्रेम ही सभ्यता की मूल स्वीकृति है। हमारे देश में उच्च वर्ग और निम्न वर्ग में परस्पर सहृदयता ज़रा भी नहीं है। कुछ अपवादों को छोड़कर उच्चवर्ग के विद्वान लोग मूर्ख और ग़रीव लोगों के दुख से दुखी नहीं होते। और मूर्ख, ग़रीव लोग धनवान और विद्वान लोगों के किसी सुख से सुखी नहीं होते। यह सहृदयता का अभाव ही देशोन्नति के मार्ग में प्रमुख वाधा है। धन का अभाव उतना नहीं जितना कि प्रेम का अभाव दोनों वर्गों में दिखायी पड़ता है। वर्णगत भेद वहुत-कुछ दूर होने पर भी आदमी-आदमी में प्रेम-प्रीति-स्नेह का संवंध कटु से कटुतर होता जा रहा है। विज्ञान के युग में हम करोड़ों मील दूर चांद पर उतरे हैं। वहाँ पैदल चले हैं। लेकिन वही महाकाश पर विचरण करने वाले पृथ्वी-तल पर लौटने के लिए आकुल हो गये थे। करोड़ों मील की दूरी को यदि निकट लाना संभव होता तो मनुष्य के साथ मनुष्य के प्यार में अंतर कैसे रह जाता? तभी तो इस शोर-शरावे में माँ की समीपता में आकर एक परिपूर्ण जीवन का स्पर्श मिलता है। नीरवता में मिट जाते हैं सकल संदेह, ठहर जाते हैं सहस्र वचन।

कलकत्ता शहर में राह चलते-चलते अचानक किसी व्यक्ति से पूछिये : यहाँ सवका प्रिय कौन है, सव लोग किसे प्यार करते हैं? किसी वड़े राजनीतिक नेता का नाम कोई न लेगा। वहुतों के मुंह से एक ही नाम सुनायी देगा। और वह है जननी करुणामयी माँ टेरेसा का नाम। जाति के अभिमानी वंगालियों में साड़ी,

1. सव तुम्हारी ही इच्छा है, हे इच्छामयी माँ तारा! तुम अपना कार्य स्वयं करती हो, माँ, और लोग कहते हैं कि हम करते हैं।

पहले श्वेतांगिनी विदेशिनी ने किस मंत्रबल से यह जनप्रियता अर्जित की है, उसका कुछ आभास मिल जायेगा कालीघाट के अत्यंत प्राचीन मंदिर काली मंदिर के पास आने पर। हिंदुओं के धार्मिक विश्वास का केंद्र-बिंदु कालीघाट का यह काली मंदिर है। हर रोज यहाँ शक्ति की उपासना होती है। काली पूजा के समय झुंड-के-झुंड भक्त यहाँ आते हैं। इन सारे भक्तों के ठहरने के लिए काली मंदिर की दीवार से लगी जगह में कुछ धर्मशाला-सी बन गयी है। उस तरह की एक परित्यक्त धर्मशाला कलकत्ता की नगरसभा ने 1952 ई॰ में मदर के हाथों में दे दी।

कालीघाट के मंदिर से लगे फीके पीले रंग के एकमंजिले मकान में घुसते ही बड़े ब्लैक बोर्ड की तरह एक बोर्ड पर लिखे शब्द दृष्टि खींच लेते हैं :

Corporation of Calcutta
Nirmal Hriday
Home for dying destitutes

इसके नीचे बँगला में लिखा है : कलकत्ता पौर प्रतिष्ठान, निर्मल हृदय, मुमूर्षु निराश्रयों का आश्रय-स्थान।

साइनबोर्ड को लेकर बड़ा भारी आंदोलन हुआ था। मंदिर के साथ ईसाई प्रतिष्ठान—असंभव ! न, यह नहीं हो सकता। इस तरह की संस्था यहाँ रह ही नहीं सकती। कट्टर हिंदुओं का एक भाग बिगड़ उठा। मंदिर के चार सौ पुजारी भी बिगड़ गये। वे एक साथ शोर मचाने लगे। विरोध प्रगट किया। किसी-किसी ने तो यह भी कहना शुरू कर दिया, "ब्रिटिश राज में जो नहीं हुआ, वही स्वतंत्र भारत में होगा ?" बहस-मुबाहिसा, धरना, व्याख्यान-पर-व्याख्यान ! आलोचना के बाद जब गड़बड़ चोटी पर पहुँच गयी तो एक दिन शाम को माँ खुद ही आयीं। धीर-स्थिर चित्त से आगे बढ़ीं। विरोधियों से बातें कीं—"आप लोग अगर मुझे मारना चाहते हैं तो मारिये, उसमें कोई नुकसान नहीं, लेकिन इस मकान में जो कष्ट में पड़े शरणार्थी हैं, दया कर उन्हें परेशान न करें। दुनिया का मोह छोड़ जाने के पहले उनको ज़रा शांति में रहने दीजिये।" आग में पानी पड़ने के समान अचानक गहरी रात की-सी नीरवता छा गयी। सारे पुजारियों का चेहरा माँ की ओर लगा था।

यह तो यीशु की प्रतिध्वनि थी ! क्रूस पर चढ़े, प्रबल पीड़ा में कातर, यीशु ने ही तो कहा था, "हे प्रभु, तुम इनको क्षमा कर दो ! ये लोग नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।" और कुछ न कहकर ये दो ही वाक्य कहकर तो यीशु ख्रीस्ट अमर होकर हमारे हृदयासनों पर विराज गये। माँ की भी तो यही बात थी, 'मुझे मारो तो कोई हानि नहीं, मृत्युपथ-यात्री इन पीड़ितों को ज़रा सो लेने दो।'

यहीं अंत नहीं है। कुछ दिन वाद आंदोलनकारी पुजारियों में एक व्यक्ति को दु:साध्य यक्ष्मा रोग हो गया। माँ जिस प्रकार अपनी संतान पर ध्यान देती हैं उसी तरह माँ टेरेसा ने उस पुजारी की सेवा की। पुजारी को मृत्यु के हाथों से बचाना संभव न हुआ। किन्तु यही सही है कि आत्मीय स्वजनों से उन्हें जो नहीं मिला वह माँ से मिला। इसका मूल्य ही क्या कम है ? इसके वाद सबका हृदय-परिवर्तन हुआ। काली मंदिर के पुजारी, भक्त—सभी माँ टेरेसा के भक्त और समर्थक बन गये। एक पुजारी ने माँ को प्रणाम कर कहा, "मैं तीस वरसों से माँ काली की पूजा करता आ रहा हूँ। आज तुम में ही अपनी माँ का साक्षात कर धन्य हो गया। मेरा जीवन सार्थक हो गया।"

केवल साइनबोर्ड टाँगकर शोभा बढ़ाना ही नहीं, कोई मुमूर्षु व्यक्ति, परिचित हो या अनजान, यदि इस मकान के आगे एक वार आ जाये तो उसके जीवन का दायित्व इस 'निर्मल हृदय' पर हो जाता है। यहाँ का दायित्व जिन पर है मैंने उनसे ही पूछा था, "अच्छा, आपके पास दो कमरे हैं। एक में पुरुष हैं, दूसरे में महिलाओं के रहने का प्रबंध है। अधिक-से-अधिक तीन सौ लोग रह सकते हैं। लेकिन कलकत्ता-जैसे शहर में निराश्रित मुमूर्षु लोगों की संख्या तो उँगलियों पर गिनने से समाप्त नहीं होगी। इतनी कम शैया में कैसे चलाती हैं ?"

सिस्टर लूक साड़ी पर टँके चांदी के क्रूस चिह्न को स्पर्श कर वोलीं, "शैया कितनी ही कम क्यों न हों, हम किसी मुमूर्षु को लौटाते नहीं। यह मकान तो उनका ही है। लौटाने का प्रश्न ही नहीं उठता। जिस तरह भी हो, कुछ व्यवस्था हो ही जाती है।"

अंदर घुसते ही वायीं ओर एक विस्तर पर एक युवक को बैठा देखकर उसके पास गया। तेईस-चौवीस वरस के दुवले-पतले युवक का नाम मंटूलाल था। मकान मेदिनीपुर के श्रीकृष्णपुर गाँव में था। ढाई महीने पहले एक जाड़े की रात को यहाँ आया। वचपन में उसने माँ-वाप खो दिये थे। राइटर्स विल्डिंग्स के पास फल वेचने से उसका किसी तरह दो मुट्ठी खाने का इंतज़ाम हो जाता था। मेहनत के हिसाव से खाना न मिलने से मंटूलाल का स्वास्थ्य अकाल में टूट गया। वीच-वीच में गले से खून भी आता रहता था। सव-कुछ जान-वूझकर भी वह डॉक्टर के पास न जा सका था। इस हालत में फलों का टोकरा सिर पर लेकर उसे रोज़ डलहौज़ी के दफ़्तरों की वस्ती में जाना पड़ता था। सेव, नाशपाती, संतरे उसके टोकरे में एक के ऊपर एक सजे रहते। मंटूलाल वोला, "एक दिन रात में टोकरी के साथ फुटपाथ पर गिर गया, खून की उल्टी होती रही। वेहोश हो गया।" तभी से मंटूलाल यहाँ है। यक्ष्मा रोग से मुक्त होने पर वह फिर सिर पर टोकरी रखकर निकलेगा, पुकार-पुकारकर फल वेचेगा।

मंटूलाल के पास के विस्तर पर लेटा था तेरह-चौदह वरस का एक लड़का।

बहुत कमजोर था। दोनों पैर पतले पड़ गये थे। चलने में असमर्थ किशोर का एक पैर छाती के सहारे लेकर एक विदेशी युवक मालिश करने में लगा हुआ था। विश्वविद्यालय का छात्र रॉबिन्स सुदूर न्यूयार्क से यहाँ आया है। अमरीका के पत्र-पत्रिकाओं में मदर के संबंध में लेख पढ़कर उसे अच्छा लगा। इसीलिए रुपये जमा कर हवाई जहाज से समुद्र पार कर माँ के पास चला आया।

मैंने रॉबिन्स से पूछा, "यह जो तुम मन लगाकर लड़के के पैर की मालिश कर रहे हो, इसमें तुम्हें कुछ कष्ट नहीं होता है?" रॉबिन्स के लाल चेहरे पर हँसी फूट पड़ी—"नो, नॉट ऐट ऑल।" बस इतना-सा जवाब था। क्षण-भर में वह खुली हँसी जैसे कहीं गायब हो गयी। रॉबिन्स उस समय भी सिर झुकाये मालिश किये जा रहा था।

रॉबिन्स की उम्र ही कितनी होगी! बहुत होगी तो बीस-इक्कीस। चौरंगी के एक होटल में ठहरा है। सवेरे-शाम खाना-पीना भी वहीं होता है। खाना-सोना छोड़कर बाकी समय इसी 'निर्मल हृदय' में बिताता है। चार महीने की छुट्टी बिताकर रॉबिन्स देश लौट जायेगा। शीशी में से मालिश का तेल हथेली पर उँड़ेलते-उँड़ेलते रॉबिन्स बोला, "मैं अकेला नहीं हूँ। यह देखिये, मेरी उम्र के एक और विदेशी युवक मन की खुशी के लिए काम कर रहे हैं। उनका घर आस्ट्रेलिया में है।"

न, ये हिप्पी नहीं हैं। सिर के बाल ठीक से व्यवस्थित हैं। पैंट, शर्ट पहने हैं। पैरों में रबड़ के स्लीपर हैं। कोई दो महीने, कोई चार महीने माँ-बाप की आज्ञा लेकर माँ टेरेसा से मिलने निकल पड़े हैं। साथ में ये अतिरिक्त धन लिये जा रहे हैं—सेवा का मन। केवल यही दो नहीं, आज़ाद जीवन को छोड़कर पश्चिमी संसार के असंख्य युवक-युवतियाँ दीवानों की तरह पारस पत्थर की खोज जैसी किसी और चीज़ की खोज में देश-विदेश में घूम रहे हैं।

आठ

आज कालीघाट के 'निर्मल हृदय' की चर्चा कलकत्ता के सारे लोगों की ज़ुबान पर है। माँ खुद भी शायद इसको सबसे अधिक प्यार करती हैं। कलकत्ता में रहने पर हर इतवार को सवेरे माँ यहाँ आती हैं, बातें करती हैं। क्यों न हो? यही तो उनका 'फ़र्स्ट लव' है! अमरीका, इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका—कहीं भी क्यों न जायें, माँ 'निर्मल हृदय' की बात कभी नहीं भूल सकतीं। हवाई जहाज पर जाते-जाते भी अकसर माँ की आँखों के आगे कालीघाट के 'निर्मल हृदय' के मुमूर्षु लोगों

की तसवीर तैर जाती है। आसपास ही यीशु की वाणी स्पष्ट हो उठती—'मुमूर्षु की सेवा करने के अर्थ ही हैं मेरी सेवा करना।' इसीलिए तो यह घर निर्मल है। अँग्रेज़ी के 'इमैकुलेट सोल' का यह सुन्दर बंगलाकरण माँ का ही तो किया हुआ है। 'निर्मल' और 'निर्मला'—ये दो शब्द माँ को बहुत पसंद हैं। उन्होंने शिशु-भवन का नामकरण किया है 'निर्मला शिशु-भवन'। और दमदम में केनेडी सेंटर के आगे 'निर्मला' लगा दिया है। 'निर्मल करो, उज्ज्जवल करो, सुन्दर करो, हे'—माँ के अंतर की बात भी तो यही है।

चारों ओर पेड़-पौधे—बेल, जूही, रजनीगंधा, गुलाब के फूलों की छोटी-छोटी पौध, समीप ही हरियाली की धूम—इस परिवेश में वैसे ही मन कोमल हो जाता है। कवित्व के 'क' की समझ न रहने पर भी अपने को कवि-सा समझना बहुत अच्छा लगता है, किन्तु मृत्युपथ-यात्री निराश्रितों के आश्रय-स्थल 'निर्मल हृदय' को देखने के लिए कठोर हृदय की ज़रूरत है। केवल सहानुभूति ही काफ़ी नहीं है।

बड़े-से कमरे के एक सिरे से दूसरे सिरे तक क़तार-की-क़तार लोहे की चार-पाइयाँ हैं। वे ऐसी बनी हैं कि उन्हें आसानी से हटाया जा सकता है। मोड़कर खड़ी कर दी जाती हैं। सलाइन की बोतल टाँगने के लिए यह प्रबंध है। एक के बाद एक शैया बिछी हैं। साफ़-सुथरी। मेडिकल कॉलेज की तरह बड़ा वार्ड है। अंतर केवल यही है कि हज़ारों रुपये सरकारी फ़ंड से ख़र्च करने पर भी सरकारी अस्पतालों में जो दृश्य अकसर देखने को मिलता है वह यहाँ न था। हर शैया के पास होकर आने-जाने का पतला रास्ता है। दो हॉल कमरों में से पहले में पुरुष और भीतर के कमरे में महिलाएँ रहती हैं। बीच में एक सफ़ेद पर्दे की ओट है। पास ही रसोई है। हॉल के दाहिनी ओर के कोने में एक छोटी-सी जगह प्लेटफ़ॉर्म बनाकर ऊँची बनायी गयी है। यहीं सिस्टर ऑफ़िस का कामकाज निबटाती हैं। ऑफ़िस के सामान में है एक कुर्सी, एक मेज़ और मेज़ पर दो रजिस्टर। रजिस्टरों में बीमारों की भर्ती का दिन और जो गुज़र जाते हैं उनका नाम और मृत्यु-दिन लिखा रहता है। हमेशा दो सौ के लगभग रोगी यहाँ रहते हैं। सौ में से पचास महिलाएँ हैं। परलोक से बुलावा न आने पर यहाँ के रहने वालों में एक भाग मोटे तौर पर ठीक हो जाने पर भी जाना नहीं चाहता। माँ कहती हैं, "वे कहाँ जायेंगे? उन्हें जाने लायक़ कोई जगह ही नहीं है।" 'मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़' की चार सिस्टर और दो ब्रदरों पर इन सारे रहने वालों की देखभाल की ज़िम्मेदारी है।

"Death is not an end, it is the beginning of life."

'मृत्यु जीवन का अंत नहीं, आरंभ मात्र है।' जीवन-मृत्यु का यह दार्शनिक तत्व अनुभव करने पर इस 'निर्मल हृदय' में आना होगा। कम प्रकाश के इस हॉल में मृत्यु रोज़ की घटना है। गौतम बुद्ध को जरा व मृत्यु देखने के लिए सड़क पर मुर्दा लिये शोकग्रस्त लोगों को देखना पड़ा था। और इस 'निर्मल हृदय' के जराग्रस्त

रोगाक्रांत लोग ग़रीबी की शैया पर लेटकर गड्ढों में धँसी आँखों से मौन प्रायः देखते हैं कि उनके आस-पास की शैया पर क्षीण देह पर सफ़ेद कपड़ा ढँका है। रविवार होने पर प्रार्थना के अंत में माँ आचार्य जगदीशचन्द्र वसु रोड से सवेरे ही यहाँ चली आती हैं। हर एक की खाट के पास बैठती हैं, बातें करती हैं। पता करती हैं कि कौन कैसे हैं।

एक शैया पर सिर से पैर तक कम्बल से ढके एक आदमी को देख कर माँ ने कंबल हटा दिया। उसमें से एक किशोर का चेहरा निकल आया। किशोर तेज़-तेज़ साँसें ले रहा था। माँ ने प्यार से रोगी संतान के सिर पर हाथ फेरा। किसी भी तरह का भावावेग व्यक्त न कर सहज भाव से बोलीं, "अब नहीं लगता कि ज्यादा देर तक बचेगा।" बात खत्म न होते ही दोनों निमछौंही आँखें उलट गयीं। माँ का ही मन! धीरे-धीरे अपने ही हाथों से किशोर की देह को ढँक दिया। बाद वाला आदमी गोआ का रहने वाला था। साठ बरस के इस वृद्ध का नाम बोनदिन नोरोना था। जहाज का यह कर्मचारी ट्रक के नीचे दब कर घायल हो गया। तीन महीने तक अस्पताल में था। किसी ने उसकी तलाश नहीं की। बोनदिन का कोई न था। अस्पताल से सड़क पर डाल दिया गया था। माँ ने उसके क्षत-विक्षत पाँव पर हाथ फेरते-फेरते कहा, "गैंग्रीन हो गयी है। काटकर निकाल देना ठीक था।"

औरतों के हॉल में घुसते ही एक वृद्धा ऐंग्लो-इंडियन महिला की ओर नज़र गयी। फ़र्श पर लेटी हुई भद्र महिला काँप रही थीं। माँ बोलीं, "अस्पताल क्यों नहीं गयीं?" महिला ने बताया, "उनकी देखभाल करने वाला कोई नहीं है। इसीलिए अस्पताल नहीं जायेंगी। उनकी यहाँ रहने की बड़ी इच्छा है।" माँ ने वृद्धा को आशा बँधायी। उनके लिए शैया का प्रबंध हुआ। वहीं देखा कि एक युवती नर्सिंग के काम में व्यस्त थी। युवती के पतले होंठ, मुँह, नाक—सब जल गये थे। यह दुर्घटना पेट्रोमैक्स फटने से हुई थी। वह मरणासन्न अवस्था में आयी थी। ठीक हो जाने के बाद युवती फिर कहीं न गयी। यहीं रहती है, और तमाम लोगों की सेवा करती है। इस प्रकार दो-एक युवक-युवतियों से साक्षात हुआ। निश्चित मृत्यु के ग्रास से लौट आने के बाद ये लोग फिर घर को न लौटे।

हॉल के एक हिस्से से एक वृद्ध के श्वास-कष्ट की आवाज़ आ रही थी। उस ओर कुछ देर देखने के बाद बोलीं, "यह वृद्ध कल रात यहाँ आये थे। बचने की आशा नहीं है।" हॉल की दूसरी शैया को घूम कर देखा गया कि वृद्ध के गले से अब आवाज सुनायी नहीं पड़ रही थी। माँ ने वृद्ध के माथे पर हाथ रखा। नाड़ी देखी। कुछ देर तक चुप रहीं।—वृद्ध की साँ-साँ अब नहीं सुनायी देगी। 'सब समाप्त हो गया है।' यह कहकर सफ़ेद कपड़े से ढकने के लिए माँ ने सिस्टर से अनुरोध किया।

चौदह बरस का किशोर अजीज़ुल हमें देखकर उठ बैठा। "अजीज़ुल भाई,

तुम्हें क्या हुआ है ?" प्रश्न सुनते ही अजीजुल की आँखें छलछला उठीं। सामने ही करुणामयी माँ की तसवीर लटकी थी। तसवीर की ओर देखकर वह बोला, "बाबू, मुझे टी० बी० हुई थी। यहाँ की माँओं की दया से ठीक हो गया हूँ। चल नहीं सकता था। अब चल सकता हूँ।" अजीजुल का विश्वास था कि वह कुछ दिनों में अच्छा हो जायेगा। मंगलकोट में अपने घर लौट जायेगा। छोटी बहन रेबेका को लेकर हर मेले में घूमेगा-फिरेगा।

पुरुषों का कमरा छोड़कर महिलाओं के कक्ष में गया। वहाँ एक और सिस्टर से परिचय हुआ। नाम बताने में अनिच्छा प्रकट करते हुए बोलीं, "मैं यहाँ कुछ दिन हुए आयी हूँ। लोरेटो में स्कूल की अध्यापिका थी, बँगलोर में। वहाँ से लखनऊ। और अब यहाँ।" सिस्टर से बातें कर रहा था कि तभी पर्दा हटाकर एक युवक आये। महिलाओं के कमरे में अचानक बिना कुछ कहे-सुने उस स्वस्थ युवक को घुसते देख कर मुझे बुरा लगा। हुआ करें सिस्टर, हैं तो वे स्त्री। मैं तो अनुमति लेकर ही घुसा था। सिस्टर ने युवक से परिचय करा दिया। हँसते-हँसते चौबीस-पच्चीस बरस की युवती सिस्टर बोलीं, "आप शायद सोच रहे होंगे कि मुमूर्षु के आश्रय-स्थान में इस स्वास्थ्यवान, सुन्दर युवक की जगह कैसे हुई ? यह आप कृष्ण की ज़बानी ही सुनिये।"

कृष्ण का मकान उत्तर प्रदेश में है। लगभग एक बरस पहले पता नहीं कौन उसे यहाँ मरने की हालत में छोड़कर चला गया। स्वस्थ होकर उठने के बाद सिस्टरों की कृपा से वह सेंट जेवियर नाइट स्कूल में भर्ती हुआ। अच्छे स्वास्थ्य वाला कृष्ण सुशिक्षित भी हो गया है।

डायमंड हार्बर की तेरह बरस की लड़की सरस्वती मंडल अब बिस्तर पर उठकर बैठ सकती है। टी० बी० होने के बाद सरस्वती गाँव का छोटा-सा मिट्टी का घर छोड़कर शहर आने पर विवश हो गयी। सड़कों पर वह रातें काटती थी। इस हालत में एक दिन सिस्टरों की करुण दृष्टि उस पर पड़ी। यह एक बरस पहले की बात है। सरस्वती के लिए यहाँ की माँएँ साक्षात भगवती हैं। चाय, रोटी, भात, मछली, मांस, फलों के रस के सेवन से सरस्वती अब, सोलह आना न होने पर भी, बहुत ठीक थी।

सीमा के अतिक्रमण के भय से सारी कहानी कहना संभव न होगा। 'निर्मल हृदय' की बात बताने में माँ जैसे अचानक चुप हो गयीं। जपमाला लेकर बोलीं, "हाँ, पहली महिला की बात अभी भी मेरी आँखों के आगे छा जाती है। कहाँ से, यह याद नहीं है, लेकिन महिला को मैं ही सड़क पर से उठाकर लायी थी। चूहों और चींटों के अत्याचार की छाप पूरी देह पर थी। चूहों ने शरीर से मांस नोंच-नोंच कर खाया था। पहले महिला को कलकत्ता के एक प्रसिद्ध अस्पताल में ले गयी। अस्पताल के इमर्जेंसी वार्ड में जो लोग ड्यूटी पर थे उन्होंने रोगी की हालत

देखकर पहले तो भर्ती करने से मना कर दिया। डॉक्टर, नर्स, समाज कल्याण के कर्मचारी—यह सही है कि सब ख़राब नहीं हैं; लेकिन यह बात अस्वीकार नहीं की जा सकती कि डॉक्टरों का व्यवहार कभी-कभी आशा के अनुरूप नहीं होता। मेरी हठधर्मिता देखकर बाद में उन्होंने महिला को भर्ती कर लिया।"

उस घटना ने माँ के मन को भीतर तक हिला दिया। कालीघाट के काली मंदिर से लगी धर्मशाला में 'निर्मल हृदय' बाद में ही स्थापित हुआ। उपेक्षित मुमूर्षु लोगों को पता लगे कि दुनिया में उनको प्यार करने वाला है। स्वामी विवेकानन्द का 'जीवे प्रेम करे जेइजन, सेइजन सेविछे ईश्वर'[1]—यह उक्ति माँ के जीवन के आदर्श की मूल कहानी है। मानव-प्रेम के आस-पास यह ईश्वर-प्रेम ही मदर टेरेसा के जीवन का मूलमन्त्र है। माँ ने एक दिन की एक घटना बतायी।

सियालदह से एक युवती को अधमरी हालत में एंबुलेंस में 'निर्मल हृदय' में लाना हुआ। उस समय रात के दस बजे होंगे। रात का खाना-पीना समाप्त हो गया था। युवती श्वास-कष्ट में बीच-बीच में 'भात दो, भात दो' कहकर चिल्लाने लगती थी। माँ की आज्ञा से फ़ौरन भात-दाल पकाकर लड़की के आगे थाली में रखकर दिया गया। गरम-गरम भात देखकर इतनी तकलीफ़ होने पर भी लड़की उठकर बैठ गयी और मुँह में और रखने के पहले ही थाली के पास लुढ़क गयी। फिर वह न उठी। सामने इस तरह भात की थाली देखकर उसकी आँखें उलट गयी थीं। मरने के पहले उसे कम-से-कम यह तो ख़ुशी हुई कि उसके सामने भात की थाली रखने वाले लोग अभी भी दुनिया में हैं।

मृत्यु अनिवार्य है। किंतु मृत्यु-पथ के यात्री को हम क्या यह सांत्वना तक दे सकते हैं कि इस दुनिया में उसके लिए सोचने वाले हैं? उसे स्नेह करने के लिए भी कोई-न-कोई है?

बिलकुल ऐसे न होने पर भी हम सब ही किसी दिन चले जायेंगे। अब प्रश्न यह है कि शांति किस में है? आनंद का स्रोत कहाँ है? जो लोग कुछ न पाकर मृत्यु की गोद में ढुलक पड़े, या अंतिम साँस छोड़ने के पहले क्षण में जिन्हें सेवा का स्पर्श मिला—इन दोनों में वस्तुगत अंतर न रहने पर भी मानवीयता की दृष्टि से निश्चय ही अंतर है।

सुकरात बाज़ार में घूम रहे हैं। पीछे अनुगत शिष्यों का झुंड है। वे विस्मित, क्लान्त सोच रहे हैं कि यह महान ज्ञानवान दूकानों के बाद दूकानों में एक पर एक सजी चीज़ें ख़ाली आँखों से चख-चखकर किस अमृत का स्वाद ले रहे हैं? बोले: "क्या ले रहा हूँ? वत्स गण! आनन्द—जिसका परिमाण नहीं है, ऐसी ख़ुशी। कैसी बड़ी तृप्ति और सुख है!"

1. जो लोग जीवों से प्रेम करते हैं वे ही ईश्वर की सेवा करते हैं।

जिसको इस आनंद का स्वाद एक बार मिल जाये उसका जीवन धन्य है। केवल उसकी ही प्रार्थना सार्थक है जो मनुष्यों, पशु और पक्षियों सभी को प्यार करता है। जिसका कोई नहीं होता उसकी सेवा में अपने को लगा देने का एक महत्व होता है। इस सेवा में जिस सुख की अनुभूति जागती है वह धन से नहीं मिलती। इसमें धन की कोई आवश्यकता नहीं होती। कोई व्यक्ति यदि प्रशासक की लाल आँखों से डर जाता है, या यश की लालसा से अप्रसन्न चित्त से दुर्भिक्ष दूर करने के लिए लाख रुपये दान करे तो क्या उससे उनको पारलौकिक मंगल प्राप्त होगा? दान पुण्यकर्म अवश्य है, किंतु इस तरह के दान से इस लोक में सुविधा होने पर भी परलोक में पुण्य का खाता शून्य ही रह जायेगा। जिस काम में स्वतः-स्फूर्ति का अभाव हो वह कभी प्रश्नातीत नहीं हो सकता। कितने रुपये दान किये, या कितने स्कूल, कॉलिज या अस्पताल के आगे किसी के नाम को पत्थर पर लिखा गया वही किसी व्यक्ति का अपना परिचय नहीं होता है। वह इससे भी बड़ा होता है। जिस व्यक्ति के पास धन नहीं, बिना कौड़ी का वह व्यक्ति भी सेवा के प्रकाश से आलोकित हो सकता है।

बेड नंबर चौदह के वृद्ध सज्जन गुज़र गये। उस बेड पर नाक के नीचे पंगु हुए लड़के को लिटा दो। 'निर्मल हृदय' में कुछ देर बैठे रहने पर लगता कि मानो एक सराय हो। अभी तक कम-से-कम आधे लाख मुमूर्षु निराश्रितों ने यहाँ आश्रय पाया है। बेड नंबर चौदह की तरह सौ में पच्चानवे इस दुनिया से चले जाते हैं। वे लौटकर नहीं आते।

यहाँ के हर रहने वाले से माँ बातें करती हैं। माँ के स्नेह-ममता में यह सर्वहारा का दल द्वितीय जीवन प्राप्त करता है। निरानंद जीवन में वे शुद्ध बँगला में आशा की वाणी सुनाती हैं : 'भगवान हैं।'

भगवान और प्यार—ये दोनों शब्द समानार्थक हैं। तभी तो माँ कहती हैं, प्यार के बिना भगवान के राज्य में प्रवेश नहीं किया जा सकता। उनका अनुभव नहीं किया जा सकता। माँ के साथ दो-एक अनुष्ठानों में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वहाँ भी बातचीत के बीच में प्यार की बात माँ के मुँह से सुनी थी। भक्त नर-नारियों का दल माँ को घेरे हुए था। ऑटोग्राफ़ चाहिए। अपना नाम ऑटोग्राफ़ बुक के पहले पन्ने पर या कापी में लिख देती हैं।

यीशु का, भगवान का अस्तित्व शयन में, स्वप्न में—सदा, सर्वदा। हर क्षण एक ही भावना।

बी० बी० सी० लंदन के मैल्कम मैगरिज ने अपनी 'समथिंग ब्यूटीफ़ुल फ़ॉर गॉड' पुस्तक में एक अलौकिक घटना का उल्लेख किया है। लंदन के बी० बी० सी० टेलिविज़न के लिए वे मदर टेरेसा और मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज पर एक चित्र बनाने कालीघाट के 'निर्मल हृदय' आये थे। कैमरामैन ने बताया कि कमरे में जो

रोशनी है उससे तसवीर नहीं खिंचेगी। इसीलिए कैमरामैन ने कमरे के बाहर का ही हिस्सा लिया। उस पर भी कुछ फिल्म बाकी रह जाने से कमरे के अंदर की तसवीर भी ले ली गयी। यह समझ लिया गया था कि अंदर की तसवीर नहीं आयेगी। आती भी तो अच्छी बनने की कोई संभावना न थी। फ़िल्म डेवलप करने के बाद देखा गया कि बाहर धूप में जो तसवीर खींची गयी थी उससे बहुत साफ़ और अच्छी, अंदर कम प्रकाश में खींची वे तसवीरें थीं जिनकी आशा छोड़ दी गयी थी।

इस घटना की बात पूछने पर माँ ने गहरे विश्वास के साथ कहा, "हाँ, ऐसी घटना हुई तो थी। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। ईश्वर सदा, हर दिन, हर क्षण, अपने को प्रकाशित करते रहते हैं। किसी-न-किसी घटना में उनका अस्तित्व हम अनुभव कर सकते हैं।"

आवश्यकता उस अनुभूति की ही होती है—जिसके सहारे भगवान के प्रेम के राज्य में आगे बढ़ना होगा। इस अनुभूति की कमी-बेशी में ही सब-कुछ संभव-असंभव होता है।

नौ

उस भेड़ के बच्चे की करुण बात याद आ रही है जो भेड़िये के डर से जंगल में झाड़ियों की आड़ में अपने को छिपाये खड़ा था। एक आदमी ने भेड़ के बच्चे को उठा लिया। भेड़िये से बचने की खुशी में उसने आदमी के शरीर, हाथ, पैर आदि चाटना शुरू कर दिया। लेकिन वह आदमी घर पहुँचकर जब भेड़ के बच्चे के गले पर तेज़ तलवार चलाने को तैयार हुआ तो भेड़ का बच्चा उससे बोला, 'मैंने सोचा था कि जंगली भेड़िये से ज़्यादा भयंकर कोई नहीं होता। लेकिन अब देख रहा हूँ कि वह भेड़िया साक्षात मेरे सामने खड़ा है।' इसलिए ईश्वर की अनुभूति इन सभी लोगों के जीवन में आना बहुत कठिन बात है। उसके लिए मन को तैयार करना होता है। 'मन चलो अपने निकेतन को'—मुँह से इसकी आवृत्ति करना या संगीत में कंठ में धारण करना जितना सहज है, वास्तव में, क्रियात्मक रूप में शायद उतना ही कठिन है। मन ही तो सारी इंद्रियों का राजा है। इस राजा को ठीक राह पर चला सकें तो बहुत लंबा रास्ता वैसे ही तय हो जाता है।

इस ईश्वरानुभूति के होते ही मनुष्य अपने हृदय में उस सत्य को प्राप्त कर सकता है। रवीन्द्रनाथ की भाषा में—'पृथिवी मृत्यु केओ कोले करिया संग, जीवन केओ कोले करिया राखे। पृथिवीर कोले उभयेइ भाइबोनेर मत खेला करे।

पृथिवीते याहा आसे ताहाइ जाय।'[1] इस उक्ति को ध्रुव सत्य मान लेने पर मृत्यु-पथ-यात्री असहाय, अनाथों की सेवा में अपने को लगा सकने के समान और महान चीज़ क्या हो सकती है ?

पंगु, असमर्थ, अनाथ रोगियों के प्राण उनकी स्नेहमयी ममता में 'निर्मल हृदय' में आश्रित हैं। माँ टेरेसा मानवता की साक्षात प्रतीक हैं। इस असाधारण मानव-प्रेम के निकट ईश्वर-प्रेम ने माँ टेरेसा के हृदय में एक गहन विश्वास की रचना की है। इसी विश्वास का एक अनुपम उदाहरण मिला 1962 ईसवी में। इसी समय उन्हें आगरा से एक टेलिग्राम मिला। वहाँ के मिशनरियों ने उन्हें बताया कि आगरा में शिशुभवन के निर्माण के लिए पचास हज़ार रुपयों की ज़रूरत है। यह बहुत ज़रूरी है। उस समय माँ के पास एक पैसा भी न था। इसीलिए बता दिया कि इतना रुपये देना उनके लिए संभव न होगा। रुपयों के न होने से एक भला काम, प्रेम का काम न होगा, यह सोचकर उन्हें दुख हुआ। लेकिन चारा ही क्या था ? थोड़ी देर बाद फ़ोन घनघना उठा। दूसरी ओर से एक भले आदमी की आवाज़ सुनायी पड़ी। फ़िलिपाइन सरकार मैगसेसे पुरस्कार के साथ माँ को नक़द पचास हज़ार रुपये देगी। टेलीफ़ोन का रिसीवर रखकर माँ ने हँसते-हँसते कहा, "देखती हूँ कि भगवान आगरा में शिशु-निवास बनवाना चाहते हैं।" इस सहज, सरल विश्वास ने ही मदर टेरेसा की अंतर्निहित शक्ति को जाग्रत किया है।

माँ के जीवन में किसका प्रभाव सबसे अधिक है ? गांधी, नेहरू, श्वाइत्ज़र अथवा मार्टिन लूथर का ? ज़रा भी दुविधा नहीं और न कोई संदेह ही। बोलीं, "यीशु का।" "किस पुस्तक ने आपके समस्त जीवन को प्रभावित किया है, माँ ?" का उत्तर था, "बाइबिल ने।"

"सारी दुनिया आपका घर है। कैसे चलता है ? कहाँ से आता है धन ?"

"रुपये तो कोई समस्या ही नहीं हैं। वह मिलते हैं, मिल जाते हैं। शुरू में ज़रूर थोड़ा कष्ट हुआ था। दुख तो रहेगा ही। वह तो आनंद का परिपूरक है !" मिलन में ही प्रेम का सुख रहता है। इसीलिए कहा जाता है कि वियोग में क्या केवल दुख ही है ? कवि की भाषा में—'प्रेमेर आनन्दे थाके शुधू स्वल्पक्षण, प्रेमेर वेदना थाके समस्त जीवन।'[2] "अवर स्वीटेस्ट सांग्स आर दोज़ दैट टैल ऑफ़ सैडेस्ट थॉट।"[3] भगवान ही अपने भक्तों में मिलते हैं। उनका जीवन सहज है। अनुत्तेजित स्वर में भी अनमनीय दृढ़ता या विश्वास स्थापित कर सकते हैं।

---

1. पृथ्वी मृत्यु को भी गोद में ले लेती है और जीवन को गोद में लिये रहती है। पृथ्वी की गोद में दोनों ही भाई-बहन की तरह खेलते हैं। पृथ्वी पर जो आता है सो जाता है।
2. प्रेम का आनंद कुछ देर ही रहता है किंतु प्रेम की वेदना जीवन-भर रहती है।
3. हमारे सबसे मधुर गीत वे हैं जो सबसे अधिक दुख का वर्णन करते हैं।

दुखियों के लिए माँ सब सहने को तैयार रहती हैं। इस काम में अंत तक देखे बिना वे कुछ नहीं छोड़ती। यदि किसी विषय में माँ से उनके किसी साथी का मत-भेद होता है तो भी अंत में साथी को माँ की ही बात माननी पड़ती है। एक बार पोप पॉल ने स्वयं उनसे रोम की बस्तियों की उन्नति की योजना में रोम में मिशन-रीज ऑफ चैरिटीज की शाखा खोलने का अनुरोध किया। वहाँ के अनेक पादरियों ने प्रश्न किया था कि "रोम में अभी बहुत संन्यासिनी हैं। इन संन्यासिनियों को सही काम नहीं मिल रहा है। क्या वहाँ मिशनरीज ऑफ़ चैरिटीज को बुलाने की जरूरत है?" माँ टेरेसा ने अपने स्वभाव के अनुसार शांत चित्त से उत्तर दिया। उन्होंने लिखा, "वहाँ तमाम संन्यासिनियों को अगर खोजने पर काम नहीं मिलता, तो मिशनरीज ऑफ चैरिटीज का मुख्य काम यह बताना होगा कि किस तरह काम किया जाता है और काम मिलने पर उसे सिखाना।"

माँ खुद ट्रेन में दूसरे दर्जे में बैठती हैं। नीचे उकड़ूं होकर इस पैंसठ बरस की उम्र में भी कमरे में फ़र्श पोछती हैं। दुखी गरीबों का अकेलापन, ऐश्वर्यहीनता, सरल जीवन-यात्रा—कुछ भी उनकी नजर से नहीं चूकता। समस्त ग़रीब लोगों में जो महत्वपूर्ण है उससे परिचित होने की आवश्यकता है। एक बार माँ ने एक भूखे अन्नहीन हिंदू परिवार के लिए कुछ चावल जमा किये। माँ के कुछ कहने के पहले ही हिंदू परिवार की गृहिणी ने उन चावलों के दो भाग कर डाले, क्योंकि पड़ोस के मकान में जो मुसलमान परिवार था वह भी बहुत भूखा था। उनकी भी जरूरत कम न थी। ग़रीबी की इस महानता की क्या कोई तुलना हो सकती है? याद आती है टीटागढ़ के पायट्समैन हरिलाल के आत्मत्याग की महान घटना। छोटे-छोटे स्कूली बच्चे कापी-किताबें लेकर रेलवे लाइन पार कर रहे थे। हरिलाल ने देखा कि एक रेलगाड़ी तेज गति से चली आ रही है। क्षण-भर में नन्हें-नन्हें बच्चों को कुचलकर चली जायेगी। हरिलाल अपनी बात भूल गया। रेल-लाइन पर झपट पड़ा। छात्र को धक्का देकर हटा दिया। छात्र तो बच गया, माँ-बाप के पास घर लौट आया। लेकिन हरिलाल न लौटा। राक्षसी रेल-लाइन के नीचे उसका जीवन सदा के लिए दब गया। एक सौ बारह रुपये वेतन वाला हरिलाल जायसवाल अपना जीवन देकर मानवता का जो जयगान गा गया वह किसी दिन दबा नहीं रहेगा। रेललाइन पर से दो जानें बचाने के लिए दस बरस पहले बर्दवान लाइन पर ईंटाचूना कॉलेज के अध्यक्ष विशिष्ट शिक्षाविद अविवाहित गोपालचन्द्र मजूमदार ने अपना जीवन विसर्जित किया था। दोनों ही मृत्यु महान हैं। और इनमें हरिलाल की बात ही बार-बार जैसे मन को झकझोरती है।

ग़रीब लोग जिस तरह हमसे कुछ चाहते हैं उसी तरह हमें भी उनके साथ की जरूरत है। समाज से इनको दूर हटा रखने का अर्थ होता है अपने को परम-

पिता के पास से दूर हटा लेना। इसके सिवा, उनके संपर्क में आने से हमारी मानसिकता और भी समृद्ध हो सकती है। यह मां का ही तो कहना है।

दस

मदर के साथ काम करने का सौभाग्य प्राप्त करने वाली एक सिस्टर ने मां के बारे में बातचीत करते हुए एक घटना बतायी—"मां एक दिन मुझे साथ लेकर निकलीं। धनी और बड़े लोगों के अच्छे-अच्छे मकानों को देखकर वे बोलीं, 'इन मकानों में जाकर अनाथ शिशुओं के लिए खाना मांगना होगा।' मुझे बहुत संकोच हुआ। उसे शर्म भी कह सकते हैं। काम अजीब-सा लगा। मुंह खोलकर मन की बात भी न कह सकी। अंत में गरदन हिलाकर असहमति व्यक्त की। मां ने केवल इतना कहा, 'सिस्टर, यह काम तुमको ही करना होगा। क्योंकि इस बात को तुम अच्छी तरह जानती हो।' मां के मुंह से यह बात सुनने के बाद मेरी सारी लज्जा, घृणा, भय क्षण-भर में दूर हो गये। खुशी से भिक्षा की झोली लेकर निकल पड़ी। अब भी निकलती हूं। बहुत-से लोग भिक्षा का दान ज़मीन पर फेंक देते हैं। कुछ लोग ख़फ़ा हो जाते हैं। ऐसा भी देखा है कि अस्सी के बाद के वृद्ध लाठी के सहारे नीचे उतर आये हैं। उन्होंने दान-सामग्री हाथों में थमा दी है। सामान्य रहने पर ही यह दान असामान्य रहता है। दान के पीछे इस आंतरिकता की आवश्यकता है। अब तरह-तरह के लोगों को देखकर अपने मन में हंसती हूं और सोचती हूं, यह सब ईश्वर की इच्छा है।"

आडंबररहित, सहज, सरल और प्रगाढ़ प्रयत्न ही अनाथ उपेक्षितों के प्रति मां की सेवा है। जो किया जाना चाहिए उसे वे अवश्य करेंगी। वहां धन की रुकावट कुछ नहीं है। एक लाचार ग़रीब पंगु युवक के लिए एक जोड़ा कृत्रिम पैरों की आवश्यकता थी। मां को उसका प्रबंध करना ही होगा। मां ने कलकत्ता में स्थित एक विदेशी दूतावास से बात की। इसके कुछ दिनों बाद ही युवक को पैर मिल गये।

पांच लड़कियों के पिता और उनकी संतानें सड़क की पटरी पर अपनी गृहस्थी फैलाकर दिन बिता रहे थे। उस समय मां को स्वयं ही स्थान की कमी थी। लेकिन मां के कानों में यह बात पहुंची। पंचकन्या के पिता को जगह मिल गयी। मां ने उन छहों को गोद में उठा लिया। सुरुचिपूर्ण भोजन, राजमहल की तरह रहने की जगह तो शायद न दे सकें, पर कुछ भी न होने पर नमक-भात देने के लिए मां का दरवाजा खुला रहता है। मां ने खुद ही तो कहा है कि रुपये से भी बड़ी बात है

भले काम के लिए मनुष्य को प्रभावित करना। किसी को यह समझाना कठिन है कि बुड्ढे, कमजोर, रोगी, भूखे—सभी हमारे भाई हैं। माँ ने जब बस्ती के अंधकार में स्कूल शुरू किया तो उनकी टेंट में पाँच रुपये का सिर्फ एक नोट था। "लोगों ने खुद ही ढूंढ-ढांढ़कर मेरा, मेरे काम का पता लगाया। देख-भालकर वे ही सामान, रुपये-पैसे ले आये। यह सब ईश्वर की ही महिमा है। है न?"

एक बार जाड़ों में रजाइयाँ कम पड़ गयीं। रजाइयों के लिए कपड़े थे, रुई न थी। माँ जब अपना तकिया फाड़ कर रुई निकालने को तैयार हो गयीं, तभी दरवाजे की घंटी बजी। एक भले आदमी नौकरी पर विदेश जा रहे थे। वे अपने लगभग नये कंबल, चादर, बिस्तर माँ को देकर जाना चाहते थे। एक दिन चावल कम पड़ गये। और बिलकुल तभी एक भद्र महिला ने आकर बोरा-भर चावल दान दिये। देखा कि जितने चावलों की जरूरत थी, बोरे में उतने ही थे। न कम, न ज्यादा।

माँ के लिए रुपये कभी बड़ी समस्या न बने, क्योंकि वे धनी लोगों का विवेक जाग्रत कर पड़ोसी भूखों के प्रति सहानुभूतिशील बना देने में सफल हुई हैं। सरकार का द्वार उनके लिए सदा खुला रहता है। स्वर्गीय डॉ० विधानचन्द्र राय माँ के सहज शुभचिंतक थे। बिना सूचना दिये माँ सीधे राइटर्स बिल्डिंग में दुमंजिले पर बीच में डॉ० राय के कमरे में या राजा सुबोध मल्लिक स्क्वायर में उनके मकान पर पहुँच जाती। डॉ० राय ने एक बार माँ से कहा था, "लोग तो सरकार का रुपया लेकर बर्बाद करते हैं। तुम अपने आश्रमों को चलाने के लिए जो जरूरी हो ले जाओ। उन्हें ढंग से चलाओ। तुम्हें कोई हिसाब-किताब न देना होगा। मैं तुम पर विश्वास करता हूँ।" डॉ० राय के अस्सी बरस पूरे होने के शुभ दिन एक संवाददाता ने उनसे पूछा, "आज का दिन उन्हें कैसा लग रहा है?" जवाब में डॉ० राय बोले, "अच्छा ही लग रहा है, क्योंकि राइटर्स की सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते मुझे अचानक मदर टेरेसा की याद आ गयी। उस महिला ने अपना सारा जीवन दीन-दुखियों की सेवा में समर्पित कर दिया है।" (As I climbed the stairs leading to my office, I was thinking of Mother Teresa who devoted her entire life to the service of the poor.

—Dr. B. C. Roy on his 80th Birthday.)

ग्यारह

आज से चौदह बरस पहले सन् 1962 में माँ टेरेसा को सेवाव्रत में समर्पित जीवन

पिता के पास से दूर हटा लेना। इसके सिवा, उनके संपर्क में आने से हमारी मानसिकता और भी समृद्ध हो सकती है। यह माँ का ही तो कहना है।

दस

मदर के साथ काम करने का सौभाग्य प्राप्त करने वाली एक सिस्टर ने माँ के वारे में वातचीत करते हुए एक घटना वतायी—"माँ एक दिन मुझे साथ लेकर निकलीं। धनी और वड़े लोगों के अच्छे-अच्छे मकानों को देखकर वे वोलीं, 'इन मकानों में जाकर अनाथ शिशुओं के लिए खाना माँगना होगा।' मुझे वहुत संकोच हुआ। उसे शर्म भी कह सकते हैं। काम अजीव-सा लगा। मुंह खोलकर मन की वात भी न कह सकी। अंत में गरदन हिलाकर असहमति व्यक्त की। माँ ने केवल इतना कहा, 'सिस्टर, यह काम तुमको ही करना होगा। क्योंकि इस वात को तुम अच्छी तरह जानती हो।' माँ के मुंह से यह वात सुनने के वाद मेरी सारी लज्जा, घृणा, भय क्षण-भर में दूर हो गये। खुशी से भिक्षा की झोली लेकर निकल पड़ी। अव भी निकलती हूँ। वहुत-से लोग भिक्षा का दान ज़मीन पर फेंक देते हैं। कुछ लोग ख़फ़ा हो जाते हैं। ऐसा भी देखा है कि अस्सी के वाद के वृद्ध लाठी के सहारे नीचे उतर आये हैं। उन्होंने दान-सामग्री हाथों में थमा दी है। सामान्य रहने पर ही यह दान असामान्य रहता है। दान के पीछे इस आंतरिकता की आवश्यकता है। अव तरह-तरह के लोगों को देखकर अपने मन में हँसती हूँ और सोचती हूँ, यह सव ईश्वर की इच्छा है।"

आडंवररहित, सहज, सरल और प्रगाढ़ प्रयत्न ही अनाथ उपेक्षितों के प्रति माँ की सेवा है। जो किया जाना चाहिए उसे वे अवश्य करेंगी। वहाँ धन की रुकावट कुछ नहीं है। एक लाचार ग़रीव पंगु युवक के लिए एक जोड़ा कृत्रिम पैरों की आवश्यकता थी। माँ को उसका प्रवंध करना ही होगा। माँ ने कलकत्ता में स्थित एक विदेशी दूतावास से वात की। इसके कुछ दिनों वाद ही युवक को पैर मिल गये।

पांच लड़कियों के पिता और उनकी संतानें सड़क की पटरी पर अपनी गृहस्थी फैलाकर दिन विता रहे थे। उस समय माँ को स्वयं ही स्थान की कमी थी। लेकिन माँ के कानों में यह वात पहुँची। पंचकन्या के पिता को जगह मिल गयी। माँ ने उन छहों को गोद में उठा लिया। सुरुचिपूर्ण भोजन, राजमहल की तरह रहने की जगह तो शायद न दे सकें, पर कुछ भी न होने पर नमक-भात देने के लिए माँ का दरवाज़ा खुला रहता है। माँ ने खुद ही तो कहा है कि रुपये से भी वड़ी वात है

भले काम के लिए मनुष्य को प्रभावित करना। किसी को यह समझाना कठिन है कि बुड्ढे, कमजोर, रोगी, भूखे—सभी हमारे भाई हैं। माँ ने जब बस्ती के अंधकार में स्कूल शुरू किया तो उनकी टेंट में पाँच रुपये का सिर्फ़ एक नोट था। "लोगों ने खुद ही ढूँढ-ढाँढकर मेरा, मेरे काम का पता लगाया। देख-भालकर वे ही सामान, रुपये-पैसे ले आये। यह सब ईश्वर की ही महिमा है। है न ?"

एक बार जाड़ों में रजाइयाँ कम पड़ गयीं। रजाइयों के लिए कपड़े थे, रुई न थी। माँ जब अपना तकिया फाड़ कर रुई निकालने को तैयार हो गयीं, तभी दरवाज़े की घंटी बजी। एक भले आदमी नौकरी पर विदेश जा रहे थे। वे अपने लगभग नये कंबल, चादर, बिस्तर माँ को देकर जाना चाहते थे। एक दिन चावल कम पड़ गये। और बिलकुल तभी एक भद्र महिला ने आकर बोरा-भर चावल दान दिये। देखा कि जितने चावलों की जरूरत थी, बोरे में उतने ही थे। न कम, न ज्यादा।

माँ के लिए रुपये कभी बड़ी समस्या न बने, क्योंकि वे धनी लोगों का विवेक जाग्रत कर पड़ोसी भूखों के प्रति सहानुभूतिशील बना देने में सफल हुई हैं। सरकार का द्वार उनके लिए सदा खुला रहता है। स्वर्गीय डॉ० विधानचन्द्र राय माँ के सहज शुभचिंतक थे। बिना सूचना दिये माँ सीधे राइटर्स बिल्डिंग में दुमंजिले पर बीच में डॉ० राय के कमरे में या राजा सुबोध मल्लिक स्कवायर में उनके मकान पर पहुँच जाती। डॉ० राय ने एक बार माँ से कहा था, "लोग तो सरकार का रुपया लेकर बर्बाद करते हैं। तुम अपने आश्रमों को चलाने के लिए जो जरूरी हो ले जाओ। उन्हें ढंग से चलाओ। तुम्हें कोई हिसाब-किताब न देना होगा। मैं तुम पर विश्वास करता हूँ।" डॉ० राय के अस्सी बरस पूरे होने के शुभ दिन एक संवाददाता ने उनसे पूछा, "आज का दिन उन्हें कैसा लग रहा है ?" जवाब में डॉ० राय बोले, "अच्छा ही लग रहा है, क्योंकि राइटर्स की सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते मुझे अचानक मदर टेरेसा की याद आ गयी। उस महिला ने अपना सारा जीवन दीन-दुखियों की सेवा में समर्पित कर दिया है।" (As I climbed the stairs leading to my office, I was thinking of Mother Teresa who devoted her entire life to the service of the poor.

—Dr. B. C. Roy on his 80th Birthday.)

ग्यारह

आज से चौदह बरस पहले सन् 1962 में माँ टेरेसा को सेवाव्रत में समर्पित जीवन

की सरकारी स्वीकृति मिली। उन्हें 'पद्मश्री' मिली। नयी दिल्ली में राष्ट्रपति भवन में एक आयोजन में डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद के हाथों से जब साड़ी पहने श्वेतांगिनी महिला ने सरकारी सम्मान-पत्र ग्रहण किया तो सारा दरबार तालियों की जोरों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। दर्शकों के आसनों पर सम्मानित अतिथि लोग बैठे हुए थे। इनमें विजयलक्ष्मी पंडित भी थीं। विजयलक्ष्मी का वर्णन हृदयग्राही है। "मानवता की प्रतिमूर्ति यह संन्यासिनी मंच की ओर बढ़ीं। जिस उत्साह से वे रोगी शिशु या किसी मुमूर्षु व्यक्ति को कलेजे से लगा लेती हैं, पुरस्कार को हाथ बढ़ाकर लेने में उन्होंने कोई अधिक उत्साह नहीं दिखाया। लेकिन कमरे में भरे दर्शक आनंद से आत्म-विस्मृत हो गये। तालियाँ यदि प्रशंसा और अभ्यर्थना का मापदंड हों तो मदर टेरेसा के भाग्य में वह सबसे अधिक मिली थीं। राष्ट्रपति की आँखें सजल हो गयी थीं। बाद में एक ही गाड़ी में घर लौटने के समय मैंने गाड़ी में ही भाई(जवाहरलाल नेहरू) से पूछा, 'मदर टेरेसा हृदय को बहुत विचलित कर देती हैं, ठीक है न?' अब तक नेहरू चुपचाप बैठे हुए थे। उनकी दृष्टि कांच की खिड़की से बाहर, दूर कहीं थी। जवाहरलाल नेहरू ने जवाब दिया, 'तुमको कैसा लगा, पता नहीं, मुझे तो आँसू रोकने में बहुत तकलीफ़ हो रही थी'।"

विजयलक्ष्मी पंडित की अभिव्यक्ति अँग्रेजी भाषा में अभिव्यक्त हुई :

"....the magnificent Durbar Hall of Rashtrapati Bhawan became silent, when the sari-clad nun—a picture of humility walked upto the dias. She took the award as if she was taking a sick child or a dying man in her arms. It meant nothing more than that to her—but the hall went mad. Mother Teresa received the loudest applause. There were tears in the eyes of the president (the late Dr. Rajendra Prasad). Later, when we were going home, I asked my brother (the late Jawaharlal Nehru), 'Wasn't that a moving thing?' He said, 'I don't know how you felt, but I had great difficulty in restraining my tears'."

विजयलक्ष्मी देवी ने कुछ वाक्यों में माँ को सुन्दर रीति से स्पष्ट किया है :

"नम्रता और प्यार करने की क्षमता का बहुत कुछ तो उनके दर्शन से ही अनुभव किया जा सकता है।" श्रीमती इन्दिरा गांधी ने भी सहज रूप से माँ का वर्णन किया है : "To meet her is to feel utterly humble, to sense the power to tenderness, the strength of love."

इन्दिरा देवी के पिता दिवंगत प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने भी इस महान महिला को पहचानने में ज़रा भी भूल न की। तभी तो शिशुओं के एक आयोजन में जाकर नेहरूजी बोले थे, "आपके काम के संबंध में आपको कुछ बताना न होगा, मदर। मुझे मालूम है। इसीलिए तो यहाँ आया हूँ।"("You don't have

to tell me about your work, mother. I know about it. That's why I am here.")

लोरेटो की उस संन्यासिनी की सरल अभिव्यक्ति बहुत सहज रूप से हृदय को स्पर्श करती है :

The amazing thing about Mother Teresa is that she is ordinary. There are no legends (about her). (मदर टेरेसा के जीवन की सबसे विस्मयजनक वस्तु है कि वह सामान्य हैं। उनके जीवन या जीवनी के संबध में कोई कहानीन ही है।)

'निर्मल हृदय' के एक मुमूर्षु की भाषा में, "यह महिला सचमुच मानवी रूप में साक्षात देवी हैं।" लेकिन माँ ने क्या कहा ? माँ बोली, "यह काम मेरा नही है। यह तो उनका ही काम है ! मैं नही, वे।"—छोटे-छोटे, सुगंधित फूलो की तरह वाक्य ये। माँ का अपना जीवन भी तो वही है !

जिनके प्राण, मन ईश्वर को समर्पित हो वे ही तो यह बात कह सकते हैं ! इसी प्रकार वे सबके बीच अपने को प्रकाशित कर सकते हैं !

बारह

इंटाली मार्केट के पास जोड़ा-गिरजा के सामने आचार्य जगदीश बसु रोड पर निर्मला शिशु-भवन है। सीढ़ियों से दोमंजिले पर जाते ही दीवार पर टँगी तसवीर और ये शब्द नजर खीच लेते हैं .

'The poor want your love, not service only.'

केवल लिखा हुआ ही नही, कमरे मे घुसने पर नन्हे-नन्हे बच्चों के मुसकराते चेहरे देखकर मन खुशी से भर जाता है। कोई छ महीने के बच्चे को दूध पिला रही हैं, कोई चार बरस के बच्चे के मुंह में भात का कौर दे रही हैं और कोई तेल मलकर छोटे-छोटे बच्चे-बच्चियों को स्नान कराने मे व्यस्त हैं। इसी बीच देखा कि एक युवती संन्यासिनी खिलौने लेकर बच्चों के साथ खेल रही हैं। चारो ओर से घिरी हुई छोटी-छोटी खाटें हैं। कुछ बच्चे लेटे हैं, कुछ बैठे हैं। फ़र्श साफ़-उजला है। सहसा लगता है कि जैसे कलकत्ता के अभिजात हिस्से का कोई नर्सिंग होम हो।

आश्रयहीनों के रहने की जगह आनंदहीन नही है। प्रत्येक शिशु सिस्टरों के पास बेथेलहम के शिशु के समान है। सिस्टरों को देखते ही वे भागे-भागे आते हैं। साड़ी पकड़ कर खीचते हैं। हमें देखकर एक लड़की पास की मेज पर पैर टिकाकर

कंधे पर चढ़ गयी।

भारतीय पौराणिक कथा में परित्यक्त शिशु के रूप में शकुंतला की कहानी प्रसिद्ध है। अप्सरा माता द्वारा परित्यक्त शिशु-कन्या एक शकुंत के पंखों की छाया के नीचे पड़ी हुई थी। मुनि कण्व देखकर शिशु को अपने आश्रम में ले आये। माता की सेवा और ममता का स्वाद प्रत्येक शिशु पाना चाहता है। उसी मातृत्व-मय ममता की जीती-जागती प्रतिमूर्ति माँ टेरेसा हैं। परित्यक्त, पंगु, अनाथ, पितृ-मातृहीन और रोगियों के प्राण उनके 'निर्मल हृदय' और 'निर्मला शिशु भवन' की स्निग्ध ममता में आश्रित हैं।

इन शिशुओं में से अधिकांश अस्पतालों से आते हैं। दाइयाँ ले आती हैं। सिस्टरों ने डस्टविन—कूड़ेखाने—से भी उठाये हैं। मैंने एक शिशु को देखा, वहुत सुन्दर सूरत थी। खिची-खिची आँखें थीं। पांच-छ: वरस की वच्ची के चेहरे पर हँसी टिकती न थी। कलकत्ता के एक अस्पताल में छोड़कर वच्ची की माँ चली गयीं। वह जव यहाँ आयी थी तो दो महीने की थी। सिस्टरों के दुलार से और देखभाल से वढ़ चली। लेकिन यह राह पर पड़ी वच्चियाँ नहीं हैं। अकसर कुमारी अवस्था में संतान हो जाने से उन संतानों की माँ छिपकर किसी अस्पताल में या किसी नर्सिंग होम में चली जाती हैं। वहाँ पैदा होने के वाद नवजात शिशु-संतान को छोड़कर अस्पताल से चली जाती हैं। अस्पताल में भरती होने के समय ये कुमारी लड़कियाँ अपने को विवाहित वताती हैं। जरूरत होने पर पति के रूप में किसी युवक को लाने में उन्हें जरा भी संकोच नहीं होता। केवल कलकत्ता या पश्चिमी वंगाल में ही नहीं, पूरे भारत में पश्चिम की नक़ल कर युवक-युवतियों ने संभोग में लिप्त होना आरंभ कर दिया है। इसका ही अवश्यंभावी परिणाम है—अवांछित शिशुओं की संख्या में वृद्धि। पहले से जन्म-निरोध का प्रवंध करने से अवांछित शिशुओं के जन्म को रोकना संभव हो गया है। क्रमश: वढ़ती हुई जनसंख्या के दवाव से हमारा देश जव अत्यन्त कष्ट में है तो, जिस तरह से भी हो, इन अवांछित शिशुओं का जन्म रोकना अत्यंत आवश्यक है।

संतान के गर्भ में आने से पहले माँ किसी भी प्रतिरोधक व्यवस्था की पक्षपाती हैं। लेकिन संतान यदि एक वार गर्भ में आ जाती है तो उसे नष्ट करना उचित नहीं है। माँ का कहना है कि इस संवंध में पहले से ही लड़कियों को सावधान होना पड़ेगा। उनको संयमी वनना होगा। माँ को उस समय सवसे अधिक दुख होता है जव इस प्रकार की घटना किसी शिक्षित लड़की के जीवन में घटती है। क्षण-भर का आवेग रोक न सकने से कुमारी लड़कियों के गर्भ में संतान आ जाती है। उसी संतान को लंवे दस महीनों तक शरीर में रखकर रात के अंधकार में फेंक आने का किसी भी माता का मन नहीं चाहता। निस्संदेह अव कुमारी अवस्था में कोई भी महिला गर्भस्थ संतान को नष्ट कर सकती है। कोई क़ानूनी

रोक नहीं है। नया क़ानून बनने के बाद बहुत-सी लड़कियों ने गर्भपात कराया है। क़ानून की नज़रों में कुछ भी क्यों न हो, गर्भपात की घटना सुनते ही माँ के हृदय में दुख होता है। माँ का कहना है, अपनी संभोग-वासना पूरी करने के लिए एक पापरहित निर्मल प्राण को नष्ट करने का क्या किसी को कोई नैतिक अधिकार है? तभी तो माँ ने कहा है, "I am fighting abortion with adoption."[1]

इन परित्यक्त, पंगु शिशुओं को प्राणवंत करने का अध्याय बहुत ही कष्टप्रद है। बहुतों को अपोषण के कारण भुगतना पड़ता है। सिस्टरों के संसार में तीन-सौ के लगभग शिशु हैं। दस सिस्टर मुस्तैद प्रहरी की भाँति इन शिशुओं की देखभाल में लगी रहती हैं। शैशव, किशोरावस्था पार कर यौवन में पाँव रखने के पहले ही बच्चों को कहीं और भेजने की व्यवस्था होती है। हर वर्ष कुछ लड़के-लड़कियों को विदेश चले जाना होता है। वहाँ के सहृदय व्यक्ति पालन-पोषण करने का वचन देकर ही माँ के पास से इन्हें ले जाते हैं। क्या वे माँगते ही मिल जाते हैं? "न, कभी नहीं।" माँ का स्पष्ट जवाब होता है। आवेदन करने वाले की योग्यता के संबंध में संदेहरहित होने के बाद ही माँ सब-कुछ निश्चय करती हैं। अपनी संतान को क्या झट-से किसी को उठाकर दिया जा सकता है? विशेष रूप से लड़कियों के बारे में माँ को और भी सतर्क होना पड़ता है। आज जो शिशु है कल वह किशोरी होगी। उसके बाद उसके जीवन में यौवन का स्पर्श आयेगा। इसलिए यौवनावस्था में किसी लड़की को कोई बुरे काम में न लगा सके, इस बारे में भी माँ सोचती हैं। सारे सोच-विचार के मूल में संतान का कल्याण ही रहता है।

ज्ञान, अज्ञान, चैतन्य के लिए ज़्यादा परेशान होने की ज़रूरत नहीं है। ज़रूरत है मानवीयता की।

यही देखिये, शिशु-भवन में आज तक कम-से-कम दस हज़ार लड़के-लड़कियों ने अपूर्ण शिशु-अवस्था से पाले जाकर अ-आ-क-ख सीखा। शिक्षा पाकर बड़े हुए हैं। घुटनों-घुटनों, पाँवों-पाँवों चलकर वे एक दिन अपने पैरों पर खड़े होते हैं। शैशव, किशोरावस्था पार कर युवावस्था दिखायी देने के साथ ही कोई सहृदय तरुणी का हाथ पकड़कर ले जाता है। न, कोई प्रेम नहीं, युवक के माँ-बाप ही देख-भाल कर शादी कर देते हैं। लड़की को बहू बना कर ले जाते हैं।

हाँ, यही बिना माँ-बाप की लड़कियाँ पति के साथ आती हैं। उन्हें नये जीवन का स्वाद प्राप्त होता है। ब्याह के बाद लड़की जिस प्रकार वर को लेकर बाप के घर में जाते समय करती है, बिलकुल उसी तरह यह भी माँ के पास आती है।

1. मैं गोद लेकर गर्भपात का सामना कर रही हूँ।

प्रणाम करती हैं। माँ भी आशीर्वाद देती हैं।

संसार असार है। का तव कान्ता कस्ते पुत्रः।

किंतु माँ इन सब दार्शनिक तत्वों के पास नहीं जातीं। नर नारायण हैं। इससे बड़ा दर्शन और क्या हो सकता है?

तभी तो यहाँ बच्चे के बड़े होने पर कभी-कभी कोई महिला माँ होने का परिचय देते हुए भागी आती है। अपनी संतान को गोद में लेकर घर लौट जाती है।

परिवार, समाज, लोकनिंदा—सब-कुछ अग्राह्य करने के बाद ही तो यह संतान को वापस पाना चाहती हैं। माँ का हृदय तो ऐसा ही होता है। यही तो स्वाभाविक है।

कुमारी अवस्था में जो अवांछित शिशु को अस्पताल में छोड़ जाती हैं, ऐसी युवतियों के भी मन से विवाह के बाद क्या उस प्रथम संतान की स्मृति दूर हो पाती है?

माँ का कहना है, "नहीं, वह दूर नहीं होती। वे माँ के सिवा और कुछ तो नहीं होतीं।"

ऐसा भी तो हुआ है कि विवाह के बाद कोई-कोई माता पहले की उस अवांछित संतान को वापस पाने के लिए उसे खोजती फिरी हैं।

अवांछित! किसके निकट? समाज के निकट? परिवार के निकट? आत्मीय स्वजनों के निकट? उनके लिए अवांछित हो सकता है। लेकिन दस महीने दस दिन जिस युवती ने उसे गर्भ में रखा, क्या उसके लिए भी? "न, कभी नहीं। माँ माँ ही होती है। उसका कोई विकल्प नहीं है।"

निःसंतान दम्पत्ति आते हैं। कोई बच्चे से माँ सुनने के लिए या कोई दो-एक बच्चे को ले जाते हैं। अपने बच्चे की तरह उसे पालते हैं। केवल पश्चिमी बंगाल या भारत के नहीं, दुनिया-भर के लोग इस शिशु भवन में आते हैं। क्षण-भर के लिए ही सही वे इन शिशु-संतानों के सुख-दुख की कहानी सुनते हैं। दुखी मन पर शांति का प्रलेप लगाने के लिए कोई-कोई, इनमें से दो-चार शिशुओं को सात समुन्दर तेरह नदी पार तक ले जाते हैं।

माँ की नजर में, सिस्टर लोगों के लिए प्रत्येक बच्चा समान है। सब शिशुओं के हृदय में शिशुओं का पिता सोया हुआ है—यही तो उनके मन की बात है।

कौन कह सकता है कि इन सारे शिशुओं में जीवक के समान कोई महान व्यक्ति छिपा हुआ है या नहीं?

गौतम बुद्ध के अंतिम समय में उनकी चिकित्सा का भार जीवक पर पड़ा था। कौन जीवक? उसके माँ-बाप कौन थे? किसी को नहीं पता।

एक जाड़े की रात में एक नवजात शिशु को राजपथ पर पड़ा देखकर राजगृह के अभयकुमार उसे उठा लाये। दास-दासियों के पास वह बड़ा होने लगा।

ज्ञान होने के बाद जीवक ने एक दिन अभयकुमार से पूछा, "महाराज, मेरे माँ-बाप कौन हैं? मुझे देखकर सब अजीब-से हो जाते हैं। जाने क्या बातचीत करते हैं?"

जीवक की बात सुनकर अभयकुमार शांत स्वर में बोले, "जीवक, मैंने तुमको आदमी बनाया। मैं ही तुम्हारा पिता हूँ।"

"और माँ?"

अभयकुमार की आँखें धुँधली पड़ गयी, "तुम्हारी माँ कौन है, यह तो मुझे नहीं मालूम।"

इतिहास कहता है कि जीवक राजगिरि में शिलावती नाम की एक तत्कालीन अनिंद्य सुंदरी, नृत्य-निपुण रूपोपजीविनी की गर्भजात संतान था। परवर्ती काल में तक्षशिला के श्रेष्ठ चिकित्सक जीवक, बुद्ध के बिलकुल समीप आ गये थे।

कौन जाने, इन्हीं अनाथ परित्यक्त शिशुओं में भविष्य का कोई जीवक छिपा है या नहीं? छिपे रहें या नहीं, माँ के लिए सब संतानें ही एक-सी हैं।

तभी तो माँ ने कहा है, "प्रत्येक मनुष्य के अंदर मैं यीशु को देख सकती हूँ। भूख से व्याकुल व्यक्ति को कुछ देते समय मुझे लगता है कि यीशु को ही खिलाया है।

"और जब सेवा करती हूँ तब भी वही दृश्य मेरी आँखों के आगे आता है। किसी के पैरों, हाथों या देह में या किसी और जगह घाव साफ़ करते समय लगता है कि यीशु की पवित्र देह को ही धो दिया है। यह आनन्द कहकर नहीं बताया जा सकता है। यह अनुभव करने की चीज है।"

दुविधा नहीं, द्वंद्व नहीं। प्रश्न-संशय के परे इस राज्य में एक बार घुसने के बाद कोई निकल नहीं पाता।

माँ की तरह सिस्टर भी अपना-अपना काम करती रहती है। अ से अजगर भागा आता है। आ से आम पेड़ पर खाता है, 'ऐक्य, वाक्य, माणिक्य' या 'जल पड़े पाता नड़े' से शुरू कर 'सिम्पल साइमन मेट ए पाइमन'—बच्चों के मुखों से यही निकलता रहता है। पाठशाला के पंडितजी स्लेट-पेंसिल हाथ में पकडाकर हमें लिखना सिखाते थे। उसको हम कभी नहीं भूल सकते। बिलकुल उसी तरह सिस्टर की गोद में बैठकर कोई लिखता है, तसवीर खींचता है। और कोई-कोई परियों की कहानी वाले राक्षस की बात सुनते-सुनते माँ की गोद में ही सो जाते हैं।

सिस्टर ही तो उनकी माँ है।

सत्रह-अठारह बरस की एक युवती सन्यासिनी से बातें हुईं। उनका घर केरल में है। माता-पिता की स्वीकृति लेकर ही वे इस पथ पर आयी हैं। देखा कि थोड़े ही दिनों में इस शिशु-राज्य में बहुत प्रिय हो गयी हैं।

दुनिया में एक-दो संतानों को लेकर हमें कितनी परेशानी रहती है। और यह शिशु-भवन ? यह कम-से-कम तीन सौ शिशुओं का संसार है। किस तरह और कैसे यह चलता है—यह नहीं सोचा जा सकता।

दान—दान पर ही चलता है।

"जब कोई दान नहीं देता तो कैसे चलता है, माँ ?"

माँ बोलीं, "ऐसा भी हुआ है। खजाना ख़ाली। इधर शिशु-भवन का भंडार भी ख़ाली। तो क्या इतने बच्चे बिना खाये रह जायेंगे ? तभी कोई दाता मशरीर हमारे सामने आ पहुँचे।"

"यह कैसे होता है ?"

भक्त का प्रश्न सुनकर माँ कुछ देर के लिए चुप रहीं। बोलीं, "सब उनकी इच्छा है।"

"ईश्वर पर मन-प्राण छोड़ दो। देखोगे, फिर कोई समस्या समस्या नहीं लगेगी। दुख, वेदना, व्यर्थता आयेगी। आने दो। याद रखो, दुख ही आनंद लाता है और व्यर्थता ही सफलता लाती है। और वेदना जीवन को मधुमय बना सकती है। जिसके जीवन का पात्र वेदना से परिपूर्ण है वही तो वेदना से पीड़ित मानव का दुख दूर कर सकता है।"

यीशु के जीवन में भी व्यथा थी, वेदना थी। क्रूस पर चढ़ी हालत में मनुष्य पीड़ा से छटपटाता है। जीवित रहने के लिए मनुष्य बंधन छुड़ाना चाहता है।

यीशु ने क्या किया ?

यंत्रणा-कातर यीशु के धीर, स्थिर कंठ से एक ही बात निकली, 'हे प्रभु, तुम इन्हें क्षमा करो। इन्हें नहीं मालूम, ये क्या कर रहे हैं।'

भक्त ने जानना चाहा, "दुनिया में भूख, भूखे लोगों की भीड़ बढ़ ही रही है। इस समस्या के समाधान में अकेले उनके लिए कुछ करना संभव है ? और संभव हो भी तो उसका परिमाण कितना है ?"

माँ बोलीं, "हमारा काम समुद्र में पानी की बूँद की तरह हो सकता है, किंतु उस समुद्र में एक बूँद जल भी न पड़ता तो उस एक बूँद जल से समुद्र वंचित हो जाता। यही न ?"

विचार, तर्क, नैतिकता नहीं—सहज सीधा उत्तर था। असल में आरंभ में ग़लती होने पर ही तो सारे झंझट रहते हैं। बाधाओं का विचार रहता है। काम कितना बड़ा है, इस बात पर दिमाग़ परेशान करने से क्या फ़ायदा ? काम तो काम है। छोटा-बड़ा सब ही बराबर हैं। नहीं दे सकेंगे, इसलिए क्या हाथ बाँधे बैठे रहें ?

माँ बोलीं, "ऐसा क्यों ? सारे भूखों के मुँह में अन्न नहीं दिया जायेगा। सब बीमार व्यक्तियों की सेवा भी संभव नहीं है। तो क्या सेवा, दान, प्यार छींके पर

टांग दें? न, राह चलते-चलते आँखों के आगे अगर कोई भूखा आ खड़ा हो तो उसे देखना ही धर्म है। उसकी भूख मिटाने के लिए आगे बढ़ना मनुष्य की मानवीयता का तकाजा है। सख्या चाहे हजार, लाख, करोड़ कितनी ही हो। प्रत्येक मनुष्य यदि प्रतिदिन एक अच्छा काम करे तो फिर शायद समस्या न रहे।"

'एक ही सूत्र में गूंथे हैं सहस्र जीवन'—यह मनोभाव लेकर सेवा के पथ पर, प्रेम के पथ पर बढना होगा।

"कैंसर, यक्ष्मा, कुष्ठ—कौन-सी अधिक भयंकर बीमारी है?"

माँ बोली, "इससे भी अधिक भयानक जो बीमारी है उसका प्रतिकार क्या है?"

"वह कौन-सी बीमारी है?" एक सज्जन ने माँ से जानना चाहा।

माँ बोली, "वह रोग देह का नही, मन का है। डॉक्टरों, वैद्यों के पीछे रुपये फेंकने से उसका कोई प्रतिकार नहीं।"

"तो वह क्या चीज है, माँ?"

"पच्चीस बरस से अधिक अर्से में बहुत-से लोगों से मिली हूँ। बहुत-सी चीजें देखी हैं। जिसे कोई नही चाहता, जिसका कोई नही, उसके लिए यदि कोई आगे नही बढ़ता तो वही समाज का सबसे बड़ा रोग है। उस रोग को दूर करने के लिए एकमात्र ओषधि प्यार है।"

जो अवाछित हैं, उपेक्षित हैं, परित्यक्त है उनके लिए स्नेह क्या चीज होती है, यह समझने के लिए इस निर्मला शिशु-भवन में आना पड़ेगा। यह एक अलग संसार है।

कहने के लिए पार्क सर्कस, मौलाली के बहुतेरे रास्ते हैं। किन्तु इस राह के किनारे इटाली मार्केट के सामने ही एक घर मे जो दूसरा ससार बन गया है उसे उस दिन देखा। मन-ही-मन सोचा कि जीवन में कितनी ही चीजें शायद यों ही अनदेखी रह गयी हैं। उसके लिए कोई दुख नही है, न कोई शिकायत है। अपने मन को कम-से-कम यही सांत्वना दे सकता हूँ कि मैंने शिशु-भवन के निर्मल शिशुओं को सिस्टरों के कंधों पर, पीठों पर खेलते देखा है। देखा है उन्हें हँसते, रोते, दुलार करते। यही क्या कम है?

तेरह

सोदपुर के गांधी कुष्ठ आश्रम 'प्रेम निवास' से श्याम बाजार लौटा हूँ। बाहर वर्षा हो रही है। आसमान की हालत ठीक नही है। गाड़ी मे जो लोग आये थे वे

सब एक-एक कर चले गये हैं। बरसात है, इसीलिए बाहर नहीं निकल सका। इसीलिए आयोजन समाप्त हो जाने के बाद भी पंडाल के नीचे खड़ा रहा। मां ने मेरे मन की हालत समझकर या कुछ और जानकर, समझ में नहीं आया, अचानक इशारे से मुझे बुलाया। कुछ और बात कहने का मौक़ा नहीं दिया। स्टेशन-वैगन में चढ़ गया। बिलकुल सामने की जगह पर मां के पास ही जगह मिली।

कुछ समय पूर्व ही राज्यपाल ऐन्टनी लान्सलट डायस की पत्नी जोन डायस ने कुष्ठ आश्रम की स्थापना की थी। स्टेशन-वैगन के चालक बैठे। स्टार्ट किया। लेकिन गाड़ी चली नहीं। कई बार घड़बड़ की आवाज़ होने के बाद युवक चालक ने बताया, "मां, लगता है कुछ गड़बड़ी हो गयी है।"

मां हँसते-हँसते बोलीं, "गुड।"

मां के मुंह पर हँसी देखकर चालक को कुछ भरोसा हुआ। फिर एक बार स्टार्ट करने की कोशिश की। फिर भी अचल।

मां बोलीं, "वेरी गुड।" उनके चेहरे पर मुसकराहट फैल गयी।

लेकिन तीसरी बार चालक असफल नहीं हुआ। गाड़ी स्टार्ट हो गयी। तब हम सब हँस रहे थे। मां और क्या सोच रही हैं! जब सोचने की बात हो तो वे उसे हँसकर उड़ा देती हैं। इसी तरह हर काम में मां आशा जगा देती हैं।

गाड़ी बी० टी० रोड पकड़कर आगे बढ़ी। मैंने मां से पूछा, "आप बहुत जगहों पर बहुत तरह के काम करती हैं। इन सारे कामों का विवरण छापकर सर्वसाधारण में बँटवा क्यों नहीं देतीं?"

"दिस इज़ योर जॉब।" मां का संक्षिप्त-सा जवाब था।

मन-ही-मन मां पर श्रद्धा बढ़ गयी। सोचा, हम ज़रा-सा कुछ करते ही अपना ढोल पीटने में लग जाते हैं। और यह महान महिला उसके आस-पास भी नहीं जाना चाहतीं।

'मा फलेषु कदाचन'—गीता की इस बात का तात्पर्य मानो फिर एक बार अंतर के अंतस्थल में अनुभव कर सका।

समय बारह का होगा। थोड़ी-थोड़ी बरसात उस समय भी हो रही थी। गाड़ी श्याम बाज़ार की ओर बढ़ती जा रही थी। मां बीच-बीच में पीछे घूमकर संन्यासिनियों के साथ बातें कर रही थीं। सहज, सरल, सुंदर, सुस्पष्ट। ज़रा भी जड़ता न थी। जड़ता जो है वह तो हमारे भीतर ही है।

मेरा प्रश्न सुनकर मां क्या सोच रही हैं? आंखें, मुंह—सब-कुछ सामान्य है। इनमें ही जैसे कहीं कुछ असाधारण छिपा हुआ है। खिंची-खिंची आंखें, प्रशस्त ललाट, उन्नत नाक—कुछ भी तो नहीं है। लेकिन एक बार बात करते ही लगेगा कि जैसे किसी अपने संसार के पास आ पहुँचे हों। मां अकेली ही नहीं हैं, जोड़ा-गिरजा के पास आचार्य जगदीश बसु रोड पर मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़ के उस

आसमानी रंग के मकान की दूसरी संन्यासिनियाँ भी बाहर से देखने पर बिलकुल साधारण लगेंगी। कुटिया-कुटिया में, 'दरिद्र लोगों में' काम करने से असाधारण बनने से तो काम नहीं हो सकता। अंतर के माधुर्य में वे जैसी असाधारण हैं उस विषय में संदेह की जरा भी गुंजाइश नहीं है।

कुष्ठ रोगियों के लिए माँ की चिंता का अंत नहीं है। हर सड़क पर कोढ़ियों को भिक्षा का बर्तन लिये घूमते देखकर उनका मन रो पड़ता है। वे उनके बीच चली जाती हैं। उनके पास जाती हैं। बातें करती हैं। बदन को छूकर उन्हें प्यार करती हैं। जिसे कोई प्यार करने वाला नहीं उसे अगर प्यार का स्पर्श मिले तो वह उस व्यक्ति-विशेष के लिए सचमुच स्वर्गिक होता है।

एक बस्ती से दूसरी बस्ती में, कुटिया-कुटिया में माँ पहुँचती हैं। कोढ़ी के घावों को हाथों से धो देती हैं। उन पर हाथ फेरती हैं। उन्हें खुश करती हैं। स्वयं आनंदित होती हैं। हमारे देश में गांधीजी ने कोढ़ियों की सेवा अपने हाथों से की थी। उसके भी पहले एक और श्वेतांगिनी ने कोढ़ी न सही, पर कलकत्ता में प्लेग की बीमारी रोकने के लिए एक बस्ती से दूसरी बस्ती में अभियान आरंभ किया था। आज से इक्यासी बरस पहले कलकत्ता के बागबाजार की बस्तियों का दृश्य क्या था, इसे जरा सोचिये। 1899 ई० के अप्रैल की तेज धूप में सिस्टर निवेदिता स्वयं झाड़ू लेकर सड़क साफ़ करने को तैयार हुई। मुहल्ले के युवक उस दिन शर्म से गड़ गये। निवेदिता से लेकर उन्होंने खुद झाड़ू ले ली। उस दिन स्वामी विवेकानन्द ने प्लेग रोग के आक्रमण को रोकने का सब तरह की व्यवस्था का भार निवेदिता पर ही छोड़ा था। प्लेग के समान साघातिक रोग, और उसे रोकने के लिए हाल ही में आयी हुई एक श्वेतांगिनी! इस तरह उस दिन एक अचिंतनीय व्यवस्था से सब लोग आश्चर्य में पड़ गये थे। स्वामीजी के लिए ही यह करना संभव था।

स्वयं-शिक्षिका होकर भी बागबाजार के अस्वास्थ्यकर गाँव में, बस्ती की उन सीली-पुरानी कुटियों में निवेदिता प्लेग रोग से ग्रस्त बच्चे को गोद में लेकर बैठी हैं। दिन बीतने पर रात, रात बीतने पर दिन अपना निवास-स्थान छोड़कर वे इन सारी कुटियों में सेवा में लग गयी। घर को शुद्ध करने की जरूरत थी। वे खुद ही छोटी-सी सीढ़ी लेकर कोठरी में चूना पोतने लगी। रोगी की मृत्यु निश्चित जानकर भी उसकी सेवा में जरा भी शिथिलता नहीं आयी। दो दिन बाद बच्चा इस करुणामयी के स्नेहतप्त अंक में अंतिम नींद में सो गया। मृत्यु के पहले बच्चा उनको ही माँ समझकर अंत में 'माँ-माँ' कहकर रो पड़ा। निवेदिता की 'स्टडीज फ्रॉम ऐन ईस्टर्न होम' पुस्तक में प्लेग नाम के लेख में भी एक शिशु की मृत्यु का वर्णन है। केवल उनकी अपनी कोई चर्चा नहीं है। इस सांघातिक रोग के आक्रमण के प्रतिरोध में परम आत्मीय के समान उनकी निरलस और एकांतिक सेवा-

परायणता की बात कलकत्ता वालों को कभी विस्मृत न होगी। वस्तुतः इसके बाद ही निवेदिता का नाम चारों ओर फैला। वे केवल परिचित ही नहीं, श्रद्धेय भी हो गयीं।

बहुत दिन हो गये। फिर भी किताब के पन्नों में इन कहानियों को पढ़कर शरीर आज भी सिहर उठता है।

निवेदिता न सही, मां टेरेसा तो हैं। तभी तो हम मोतीझील, दक्षिण कलकत्ता के खिदिरपुर में मां के हाथ में बस्ती साफ़ करने के लिए झाड़ू देखते हैं, जिस झाड़ू को हाथों में लेकर आज से इक्यासी बरस पहले सिस्टर निवेदिता उत्तर कलकत्ता की बस्तियों को साफ़ करने उतर पड़ी थीं। चित्र एक ही है। एक पहले का और एक बाद का। समय का अंतर विचारों की एकता को अलग नहीं कर सका।

निवेदिता के साथ मां टेरेसा का धार्मिक पार्थक्य अवश्य है। किन्तु मां जब कहती हैं, "जो धर्म जीव की सेवा करना, अनाथ-असमर्थ-परित्यक्त लोगों से प्यार करना नहीं सिखाता वह धर्म, धर्म नहीं है," तब इसके बाद निवेदिता की सेवा और मां की सेवा में फ़र्क कहां है? अंधकार से प्रकाश में आना है।

चौदह

करुणामयी मां और उनकी सहस्राधिक भगिनी मिलकर इस सेवा के संसार को प्यार के प्रलेप से नित नूतन करती रहती हैं। गांधीजी के जन्मदिन, दो अक्तूबर, को टीटागढ़ के कुष्ठ आश्रम में सद्य कुष्ठ-व्याधिमुक्त उस युवती की बात बहुत दिनों तक याद रहेगी। 'गांधी प्रेम निवास' नामांकित कुष्ठ आश्रमों की स्थापना के बाद राज्यपाल डायस चले गये थे। धीरे-धीरे आयोजन का प्रांगण ख़ाली हो गया। अचानक अधेड़ उम्र का एक आदमी मां के पास आया। मां को देखते ही अधमैला कुर्ता पहने एक व्यक्ति बोला, "मां, मेरी लड़की अच्छी हो गयी है। उसका ब्याह भी पक्का हो गया है। दिन और समय भी निश्चित हो गये हैं। लड़के वाले सोने के बटन, अँगूठी, घड़ी मांग रहे हैं। मैं अब गहने-कपड़े कहां पाऊँ, मां? मां तुम्हारे रहते...।"

मां का हृदय पिघल गया। मां बोलीं, "होगा, होगा। उसका कुष्ठ जब दूर हो गया है तो ब्याह भी होगा।"

जैसी बात वैसा ही काम। गाड़ी पर बैठते ही एक सिस्टर को पुकारा। शुद्ध बँगला में बोलीं, "अरे मेरे पास एक अँगूठी है न? वह रहे या न रहे, लड़की का

कुछ ठिकाना करना ही होगा।"

पास ही तेरह-चौदह बरस की एक लड़की को खड़े देखकर पास आने के लिए हाथ हिलाया। उसके पास आते ही बोलीं, "माँ, तुम्हारा हाथ कैसा है? तेल मालिश करती हो? आउटडोर में क़ायदे से तो आ रही हो?"

लड़की माँ के मुँह की ओर मुग्ध दृष्टि से कुछ देर तक देखती रही। 'हाँ माँ, दाग करीब-करीब गायब हो गया है।

ये कुष्ठ रोगी जूता-सिलाई से चंडीपाठ तक किसी-न-किसी कार्य में निपुण हैं। खपरैल की छत के नीचे छोटी-छोटी कोठरियाँ हीं इन सब रोगियों के रहने की जगह है। जिनकी हालत ज्यादा खराब है उन्हें स्वावलंबी बनाने के लिए तरह-तरह के कामों में लगाया हुआ है।

पोप छठे पाल 1964 ई० में भारत आये थे। लौटने के समय वे अपनी सफ़ेद लिंकन गाड़ी मदर टेरेसा को उपहार में दे गये। माँ ने एक दिन के लिए भी गाड़ी का उपयोग नहीं किया। गाड़ी मिलते ही एक लॉटरी का प्रबंध किया। लॉटरी से कई लाख रुपये मिले। सब रुपये कुष्ठ आश्रम की स्थापना में खर्च हुए। इसी उद्देश्य के लिए मदर टेरेसा ने 1971 ई० की जनवरी में प्राप्त पोप जॉन शांति पुरस्कार के 21,500 डालर खर्च किये।

कुष्ठ-रोगाक्रांत सभी समाजों में परित्यक्त रहते हैं। सब होने पर भी उनका कोई नहीं होता। लेकिन जो सांघातिक रूप से आक्रांत न हों, वे कुछ काम-काज कर मामूली-सा कुछ कमा सकें, इसलिए माँ ने निश्चय किया कि एक प्रेस खरीदेंगी। प्रेस के बारे में माँ की अपनी कोई जानकारी नहीं है। रोगाक्रांत ये व्यक्ति काम कर सकेंगे या नहीं, यह भी उन्होंने नहीं सोचा। प्रेस खरीद लिया। कुष्ठ रोगी ही *उस प्रेस को चला रहे हैं। माँ में इस तरह के विचित्र संकल्प देखने योग्य हैं।*

यह सब देख-सुनकर लगता है कि मदर टेरेसा के एक घनिष्ट सहकर्मी ने जो कहा था वह सच है · यद्यपि रोग संक्रामक नहीं है, फिर भी इस संबंध में एक घृणा का भाव समाज में सर्वत्र फैल गया है। माँ के लिए प्रश्न है, 'मनुष्य मनुष्य में यह घृणा क्यों है?' आसनसोल के निकट सरकार ने माँ को जमीन का एक टुकड़ा दिया। कुष्ठ रोगियों का एक शहर—शांति नगर—खड़ा हो गया।

यह तेईस बरस पहले की बात है, सन् 1957 की। पाँच कुष्ठ रोगी माँ के पास आये। पाँच लोगों के मामूली कोढ़ होने पर भी कुछ काम हुआ। कोढ़ हो गया था, इसलिए उन्हें काम पर से चले जाने को कहा गया। उन्हें अपने आत्मीयों के पास भी स्थान नहीं मिला। भीख माँगने के सिवा और कोई चारा न था। उसी समय कुष्ठ रोग के विशेषज्ञ डॉ० सेन माँ के पास आये। डॉ० सेन ने इस रोग के संबंध में सिस्टरों को ट्रेनिंग दी।

केवल ग़रीब ही नहीं, कुष्ठ रोगियों में ऊँची शिक्षा-प्राप्त अध्यापक, डॉक्टर,

इंजीनियर, सरकारी अफ़सर, धनी लोगों की संख्या भी कम नहीं है। किन्तु इस रोग ने उनको घर, घर के प्रिय लोगों, और तो और समाज को छोड़ने पर विवश कर दिया है। अपने ही बाल-बच्चे कोढ़ हो जाने पर माँ-बाप से मिलना नहीं चाहते। जिस तरह भी हो, घर से निकाल देने पर ही उन्हें चैन आता है। इस प्रकार वे बिना किसी साथी के अकेले पड़ जाते हैं। कलकत्ता के अभिजात समाज में सुपरिचित व्यक्तियों में भी कई-एक अनादर व उपेक्षा से दिन बिता रहे हैं।

इसीलिए माँ ने इन रोगियों की सेवा के लिए सिस्टरों को नियुक्त किया है। इंग्लैंड, अमरीका से माँ ऐसी दवाइयाँ जमा कर रही हैं जो समय पर रोगी को देने से यह रोग पूरी तौर पर निर्मूल हो जाता है। कुष्ठ रोग अच्छा कर देना संभव है। किन्तु इसके लिए ज़रूरी है समय पर इलाज। निरोग होने पर सरकार की दी हुई 34 एकड़ ज़मीन पर बना शहर 'शांति नगर' उनका पुनर्वास होगा। तरह-तरह की व्यवस्था रहेगी। स्वस्थ होकर रोगी अपने ही छोटे-छोटे उद्योग खड़े कर सकेंगे। किसी को भीख की झोली लेकर न निकलना पड़ेगा।

हिमालय के समान ऐश्वर्य की अधिकारी माँ टेरेसा की सहृदयता से 55 केंद्रों में लगभग आधे लाख कुष्ठ रोगियों की चिकित्सा का प्रबंध हुआ।

पंद्रह

ग़रीबी दूर करना ही नहीं, साथ में शिक्षा के प्रकाश की भी आवश्यकता है। इसीलिए तो माँ ने धर्म के नहीं, वर्ण-परिचय के माध्यम से शिक्षा देना शुरू किया है। छात्र-छात्राओं का स्थान है फुटपाथ। इन लड़के-लड़कियों में किसी की उम्र है बारह बरस, किसी की बाईस बरस। इससे भी अधिक उम्र के व्यक्ति हैं। शहर का स्कूल तो दूर की बात, गाँव की पाठशाला की शक्ल भी इन लोगों ने किसी दिन नहीं देखी। विद्यासागर का नाम नहीं सुना। वर्ण-परिचय के पन्नों के स्पर्श करने के सौभाग्य से ये लोग आज भी वंचित हैं। दो-एक ने अगर कभी स्कूल की शक्ल देखने की कोशिश की भी तो तथाकथित शिक्षकों ने उन्हें अशिक्षित, मूर्ख कहकर स्कूल की ड्योढ़ी से विदा कर दिया।

माँ बातें कम करती हैं, जो कुछ कहती भी हैं वह मन-ही-मन में। 'दरिद्र भारतवासी, मूर्ख भारतवासी...तुम्हारे भाई'—स्वामीजी की यह वाणी जैसे उनके हृदय में गूंजती रहती है।

शिक्षा देने के पहले शुरू होते हैं स्वास्थ्य संबंधी कुछ पाठ। अपने हाथ से काम करके दिखाना पड़ता है, स्वस्थ्य रहने, साफ़-सुथरा रखने के उपाय। शिक्षित

कर किसी को कैथेलिक धर्म में दीक्षा देना माँ का काम नहीं है।

माँ ने कहा, "मनुष्य को ईश्वर की ओर ले जाना ही मेरा काम है। और उसी के लिए आवश्यक है सेवा।

"यदि प्रभु की कृपा से उनकी किसी संतान की सेवा कर सको तो तुम धन्य हो जाओगे। अपने को बिलकुल कोई महत्वपूर्ण न समझना। तुम धन्य हो कि तुमको सेवा का अधिकार मिला है, औरों को नहीं मिला।" माँ के जीवन में भी यह बात पूरी तौर पर लागू होती है। तभी तो अपने को भूलकर एक जाति, एक प्राण—एकता के आदर्श में सब-कुछ मिटा दिया। हिन्दू, मुसलमान, जैन, ईसाई का कोई भेद माँ के पास नहीं है। भेद का विचार ही अज्ञान है! अभेद-बोध ही तो ज्ञान लाता है।

पहले दिन तीन छात्राएँ आयीं। अगले दिन कई छात्र-छात्राएँ आये। इसी तरह शुरू हुआ—नया स्कूल, नया जीवन। जिस स्कूल में माँ पढ़ाती थीं वहाँ से भी तीन अध्यापिकाएँ आयीं। निरक्षरता हटाने के नाम पर ये लोग ढेर-की-ढेर पुस्तकें, बड़ी-बड़ी पुस्तकें शायद न छपा सकीं, किन्तु वर्ण-परिचय का पाठ लगातार चलता रहा।

इस सबके लिए तो धन की आवश्यकता है। वह कहाँ से आता है?

माँ बोलीं, "शुरू-शुरू में कुछ अड़चन न आयी हो, ऐसी बात नहीं है। हृदय-वान लोग सहायता करने आगे आये।"

मामूली-से-मामूली दान को भी माँ बहुत मूल्यवान मानती हैं। पाँच रुपये लेकर सड़क पर निकल पड़ी थीं। और आज, लाखों रुपयों का दान पाकर भी माँ में बहुत तेजी नहीं आती। सब उनकी दया है। मिशनरीज ऑफ़ चैरिटीज ने 81 स्कूलों में इस अवैतनिक शिक्षा-दान का प्रबंध किया है।

इसके बाद ही सिस्टरों ने सन्यासिनी बनने के उद्देश्य से आना शुरू किया। यह 1949 ई० की बात है। पहले आने वालों में पाँच-सात लड़कियाँ पूरी बंगाली युवतियाँ थीं। उसके बाद कई राज्यों की लड़कियाँ आयीं। उन्होंने ईश्वर के प्रति अपने को समर्पित किया। धीरे-धीरे और भी बहुतेरी सम्मिलित हुईं। कलकत्ता में राह चलते-चलते अब इन्हें प्राय देखा जाता है। नीले किनारे की सफ़ेद साड़ियाँ पहने रहती हैं। सिर पर घूँघट तो नहीं, टोपी की तरह साड़ी ही मुड़ी रहती है। डॉक्टर, नर्स, समाजसेविका, अध्यापिका—इनमें सब ही हैं। 1950 ई० में कुल मिलाकर बारह सिस्टर थीं। अब इच्छा रहने पर भी माँ कलकत्ता के बाहर नहीं जा सकती हैं। सिस्टरों को ट्रेनिंग देनी होती है।

"सवेरे से शाम तक, इन सिस्टरों को क्या-क्या करना होता है?"

"क्या नहीं करना होता है? कपड़े धोना, पानी से आने से ले बस्ती-बस्ती दरिद्रों की सेवा—सिस्टरों को सब-कुछ करना होता है।"

लंबे नौ बरस बाद सन् 1959 में कलकत्ता के बाहर पहला भवन बन गया। इसके बाद दिल्ली में।

"अधिकांश युवतियाँ कहाँ से आयी हैं?"

"पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, असम, उड़ीसा, मेघालय—कहाँ की नहीं हैं! विदेशी भी हैं।"

माँ बोलीं, "अधिकांश मध्य वर्ग की हैं। प्रचुरता के प्रलोभन का त्याग कर कुछ धनी लड़कियाँ भी आयी हैं। ऐंग्लो-इंडियन भी अपवाद नहीं हैं।"

"किन्तु धनी लड़कियों के लिए एक बस्ती से दूसरी बस्ती में काम करना बहुत कठिन काम नहीं है?"

"क्यों होगा? वे तो जीवन का सब-कुछ मिटा देने के लिए आयी हैं। उन्होंने अपना जीवन-मन भगवान को सौंप दिया है, इसी में तो आनन्द है। मान-सम्मान, सब-कुछ तुच्छ है। मानव-सेवा के बीच उन्होंने ईश्वर को पाना चाहा है। असीम करुणा के आधार चिर-आनन्दमय ईश्वर की बात उनको कभी विस्मृत नहीं होती। उनकी ही कृपा से दरिद्र-से-दरिद्र मनुष्य की सेवा का सुयोग पाकर ये स्वयं को धन्य समझती हैं।"

माँ बोलीं, "जिस दिन इन्होंने इस सेवाव्रत में अपने को नियुक्त किया उस दिन से ही सेवा के काम, प्यार के काम के संबंध में आलोचना शुरू हो जाती है। ईश्वर की इच्छा पूरी करने की बात लेकर भी आलोचना होती है। प्रार्थना की नीरवता में अन्दर से ही शक्ति-संचय होता है। उसी संचित शक्ति के बल से बलवती होकर वे एक बस्ती से दूसरी बस्ती को चल पड़ती हैं। वहाँ जाकर काम, लोगों के साथ मिलना-जुलना—यह दोनों ही ट्रेनिंग—इनमे अन्तर्निहित है। सामान्यतः ट्रेनिंग की प्रथम अवस्था में सिस्टर बाहर नहीं जातीं।

"ऐसा न होने से वे यीशु को किस प्रकार पहचानेंगी? अनुभव करने की शक्ति ही कहाँ से मिलेगी? दरिद्रतम मनुष्यों में ही छद्मवेशी यीशु छिपे हैं। मन की तैयारी के लिए इस शक्ति को संचित करने की बहुत जरूरत है।"

"माँ, यह तो कठोर साधना है! यह युवती संन्यासिनियाँ क्या इस सेवा के काम को सहज भाव से ले सकेंगी?"

"बहुत कम संख्या में सिस्टरों ने मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़ छोड़ी है। जो कुछ चली गयी हैं उन्हें गिनकर बताया जा सकता है। यह सचमुच खुशी की बात है। पहले से ही बहुसंख्यक सिस्टर विश्वास के साथ काम करती रही हैं।"

"ऐसा होने पर क्या पूर्णता का स्वाद उन्होंने इसी प्रकार पाना चाहा था?"

"हाँ, यह एक चैलेंज की तरह है। सब-कुछ के बदले में इन्होंने कठोरतम जीवन का सामना करने के लिए खड़े होना चाहा था।"

'हे दारिद्र्य, तुमि मोरे करे छ महान'—कवि की इस उक्ति का मतलब

उन लोगों ने मर्म-मर्म मे पा लिया है। दरिद्रता को भूषण बनाकर काम करना। भगवान को, भगवान की प्रतिमूर्ति को, तो इसके भीतर से ही खोजकर निकालना होगा ! प्यार के कगाल को, उस सर्वशक्तिमान को, इसी तरह प्यार करना होगा।

केवल बाहरी क्रियाकलाप ही नहीं, उसमे भी अधिक कुछ जरूरी है। इसीलिए मन-प्राण सचमुच ईश्वर को समर्पित हैं या नहीं, इसे भी जाँचकर देखना है। इस तरह के जीवन को वे कितना चाहती हैं ?

सस्था के काम की सुविधा के लिए अँग्रेजी सीखना अनिवार्य है। भारतीय भाषाओं मे आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए पुस्तकें हैं। किन्तु उनके अँग्रेजी मे न रहने से सिस्टरो को अँग्रेजी मे प्रकाशित बाहर की किताबें पढनी पडती हैं। भारत के बहुत-से प्रांतों से सिस्टरें आयी हैं। तरह-तरह की भाषाओं के माध्यम से बहुत बार असुविधा उत्पन्न हो जाती है। इन्ही सारे कारणो से सामान्य माध्यम के रूप मे अँग्रेजी को चुन लेना पड़ा है।

इसके बाद आती है पादरी की स्वीकृति। उसके लिए भी आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश के बाद धर्म-सप्रदाय के शिक्षार्थी के रूप मे दो बरस बिताने पड़ते हैं। उसी समय तपस्या चलती है 'कृच्छ्र साधना' तपस्या।

यही अंत नही है। मिशनरीज ऑफ चैरिटीज के नियम-अनुशासनो के साथ भी सिस्टरो का परिचय करा दिया जाता है। सिस्टर लोग जीवन-मन-प्राण से जिस काम को करने चली हैं उनके उद्देश्यों के सबंध मे भी सम्यक ज्ञान रहना वांछनीय है। गरीबी को जीवन का साथी बना लेना बहुत सहज काम नहीं है। दरिद्र को प्यार करने के लिए, उसे जानने के लिए उसके निकट जाना पड़ेगा। दरिद्रतापूर्ण जीवन का अभ्यस्त होना पड़ेगा।

सपूर्ण प्रेम यीशु के चरण-कमलों मे समर्पित है। इसी पवित्रता की शपथ तो ली है माँ ने, माँ की सिस्टरों ने ! यही तो अनुसरण की शपथ है ! मिशन के दूसरे अनुशासन तो हैं ही !

"तुम ईश्वर को कहाँ ढूंढने जाओगे, यदि तुम उसे अपने हृदय मे जीवित प्राणियों मे नही देख सकते, यदि उन्हें उस आदमी के अदर नही देख पाते जो राह मे बोझ उठाये पसीने मे तर-ब-तर हो रहा है !" यह देखना ही तो असली देखना है ! जीवन-यात्रा का आदि और अत यहीं तो है। और अंत मे, जो प्राणदान करेगा, उसका क्षय नही है। दरिद्र मानव की सेवा मे इन प्राणों को विलय कर देना होगा। बिना पैसे के इस सेवा को लेने और पाने के अधिकारी एकमात्र दरिद्र जनसाधारण हैं।

इसीलिए तो सिस्टरो से माँ को बहुत आशाएँ हैं। उन्हें मिलती भी हैं। वे — सब-कुछ दे देना चाहती हैं। यह बात हर सिस्टर जानती है कि यीशु कभी न

कभी भूखे, कभी बेसहारे—तरह-तरह के वेश में हमारे सामने उपस्थित होते रहते हैं। हम तो प्रतिदिन नित नये रूप में उनकी ही सेवा करते रहते हैं। प्यार करते हैं। प्यार ही आनंद का स्रोत है। यही विश्वास इनके जीवन में आनंद ला सका है।

सोलह

दमदम हवाई अड्डे से दिखायी पड़ता है—निर्मला केनेडी केंद्र। आम, जामुन, नारियल के पेड़ों की छाया में छोटे-छोटे बच्चे-बच्चियों की मधुर कलकल ध्वनि है। देखने में बड़ा अच्छा लगता है। जैसोर रोड के पास फाटक के ऊपर लगा साइनबोर्ड तमाम लोगों को दिखायी देगा। लेकिन इसके भीतर परित्यक्त, पंगु, अवांछित बच्चों से लेकर पति द्वारा परित्यक्त पत्नी, मूक, बधिर, मानसिक रोग-ग्रस्त लोग—सभी हैं।

जब 1971 में बांग्लादेश के झुंड-के-झुंड शरणार्थी भारत चले आये तो इस जगह पर एक शिविर बन गया था। बांग्लादेश स्वतंत्र हुआ। शरणार्थी स्वदेश लौट गये। माँ ने यह जगह न छोड़ी। उन्होंने इसे जड़, पक्षाघातग्रस्त पंगुओं का आवास-स्थान बनाया। यह केंद्र काफ़ी बड़ी जगह में फैला हुआ है।

सिस्टर क्लेयर हमको एक छोटे-से कमरे में ले गयीं। कमरे में घुसते ही देखा कि एक विदेशी स्त्री एक बच्चे के हाथ के नाखून काट रही है। यह भद्र महिला सुदूर कनाडा से आयी थीं। फ़िज़ियोथेरापी की विशेषज्ञ यह महिला पति की सम्मति लेकर चार महीने की छुट्टी पर यहाँ आयी हैं। पंगु, जड़बुद्धि वाले, पतले-पतले हाथ-पाँव या सूखे अंग वालों के शरीर की मालिश करना उन्हें पसंद है। इस काम में उनकी ट्रेनिंग, ज्ञान—दोनों ही हैं। भद्र महिला के चेहरे पर मुस-कराहट बनी ही रहती है।

बच्चे की उम्र सात बरस होगी। सिर शरीर की तुलना में बहुत बड़ा—फूले गुब्बारे की तरह था। प्रश्न करने के पहले ही सिस्टर क्लेयर बोलीं, "डॉक्टर जवाब दे गये थे। जीवित रहने की कोई आशा न थी।" बच्चे की ओर देखकर शुद्ध बँगला में बोलीं, "दिलीप, तुम्हारा गाना सुनने ताऊजी आये हैं। एक गाना तो सुना दो।" साथ-ही-साथ शुरू किया—"रघुपति राघव राजा राम, पतित-पावन सीताराम।" बाहर आते समय मन में आया कि जड़बुद्धि वाले इस बच्चे की आवाज़ तो बहुत मधुर है! उसमें तो कहीं जड़ता नहीं है।

सिस्टर क्लेयर समीप के कमरे में ले गयीं। वहाँ खाट पर एक सुंदर युवती को देखकर बोलीं, "यह बोल नहीं सकती। सारा दिन ऐसे ही बैठे-बैठे बिता देती है।"





अच्छा स्वास्थ्य, सिर पर घने बाल, स्कर्ट पहने देखकर फौरन बंगाली कहने की तबीयत न होगी। जन्म से गूँगी न थी। दो-एक बरस पहले तक बात कर सकती थी। विवाहित थी। पहली संतान होने के बाद से ही युवती की वाक्‌शक्ति चली गयी थी। युवती का उलटा भाग्य उसके बाद से ही दिखायी पड़ा। पहले सास-ससुर, उसके बाद खुद पति के साथ मन-मुटाव हुआ। अंत में युवती की माँ मदर की शरण में आयी। तभी से वह यहाँ है।

सिस्टर क्लेयर युवती की जिज्ञासु आँखों की ओर देखती रही। "मिश्रा, क्या हुआ? बातें करो। यह देखो, कौन तुमसे मिलने आया है। बातें करो। तुम तो बात कर सकती थी!" सिस्टर की ओर आँखें फाड़कर मिश्रा देखती है। हमारे मित्र फ़ोटोग्राफर पहाड़ी रायचौधरी के हाथों में कैमरा देखकर खिल्-से हँस दी। मिश्रा की बात तो सुन नहीं पाये। लेकिन उस हँसी की आवाज मानो अब भी यहीं है।

माँ के आदर्श पर प्रबुद्ध होकर पहले जो दस सिस्टर आगे आयी थीं, सिस्टर क्लेयर उनमें विशिष्ट हैं। वे माँ की ही छात्रा हैं। उनका पहले का नाम था किरण दत्त। ढाका की लड़की किरण अब सिस्टर क्लेयर हैं। माँ-बाप की सम्मति से ही इस राह पर आयी हैं। बंगला, अंग्रेज़ी—दोनों ही भाषाएँ समान रूप से बोल सकती हैं। 'निर्मला केनेडी आश्रम' की जिम्मेदारी उन पर ही है।

इन सारे पंगु, जड़बुद्धि वाले और मानसिक रोग-ग्रस्त शिशुओं को देखकर एक भक्त सीधे माँ से पूछ बैठे, "अच्छा माँ, इन शिशुओं ने तो कोई पाप नहीं किया। हम बड़े लोग पाप करने पर दंड पा सकते हैं। किन्तु बिलकुल निष्पाप इन निर्मल शिशुओं ने तो कोई पाप नहीं किया है। तो फिर..?"

प्रश्न सुनकर माँ जैसे अनमनी हो गयी। अपने में ही डूब गयी। आत्मस्थ हो गयी। क्षण-भर में फिर प्रकृतिस्थ हुई। माँ बोलीं, "असली सुंदरता तो यही है। निष्पाप, निरीह अगर कष्ट न पाते तो पृथ्वी रसातल को चली जाती। ये निष्पाप, निरीह ही तो हमारे लिए सारे पापों का दंड भुगत रहे हैं। यह कितना बड़ा त्याग है, सोचा भी नहीं जा सकता। हम इनके कितने ऋणी हैं—यह कहकर समझाया नहीं जा सकता।"

जिस तरह ये सारे निष्पाप शिशु कष्ट पाते हैं उसे देखकर लगता है कि इन्हें हमेशा के लिए सुला देना अच्छा होता। उससे इन निर्मल बच्चों को शांति मिलती। बच्चों के माँ-बाप शांति पा जाते। लेकिन माँ कभी ऐसा नहीं सोचतीं।

"जीवन मात्र ही पवित्र है। अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसे सुंदर बनाना हमारा कर्तव्य है।"

सत्रह

इस जीवन की कथा ही तो माँ बचपन से सुनती आयी हैं। यूगोस्लाविया के स्कपजे शहर के स्कूल में—हाँ, उसी स्कूल में पढ़ते समय उन्होंने क्लास में शिक्षिकाओं से कलकत्ता में जेसुइट पादरियों के काम-काज के संबंध में क़िस्से सुने थे। शिक्षिकाएँ क्लास में बैठकर जब कलकत्ता के पास दार्जिलिंग पहाड़ की चोटियों पर जेसुइटों के प्रतिदिन के जीवन पर समालोचना करतीं तो टेरेसा का मन ऐड्रियाटिक सागर को पार कर बहुत दूर चला जाता। कल्पना में किशोरी लड़की देखती दार्जिलिंग की पर्वतमाला को। क्यों था यह आकर्षण? इस संबंध में माँ ने भी किसी को साफ़-साफ़ नहीं बताया। पर एक कारण हो सकता है—उसी समय यूगोस्लाविया के जेसुइटों का कलकत्ता में आगमन।

संन्यासिनियाँ दिनोंदिन, रातोंरात काम करती हैं। दरिद्र जनता की सेवा में उनका जीवन समर्पित है। किशोरी मन में इन सब बातों ने प्रभाव डाला। तभी तो बाद में विशेष रूप से कुछ सोचना न पड़ा। 1928 ई० की 29वीं नवंबर को मात्र अठारह बरस की उम्र में वे डबलिन के लोरेटो अबे में सम्मिलित हो गयीं।

दरिद्र, दुखियों की सेवा की कहानी ने किशोरी हृदय पर जो प्रभाव डाला वही क्रमशः उनके जीवन में अधिकाधिक गहरा होता गया।

मौलाली में जोड़ा-गिरजा के सामने आसमानी रंग का मकान बाहर से देखने में और तमाम मकानों की तरह ही है। 54-ए, आचार्य जगदीश बसु रोड के इस मकान में यदि कभी जाने का सौभाग्य मिले तो आप पायेंगे कि कोने की ओर एक छोटी बैठक माँ के लिए निश्चित है। यहाँ सिस्टर भी बैठती हैं। दो-एक कुर्सियों के सिवा और कोई सामान नज़र नहीं आता।

उस दिन फ़ोन करके माँ से मिलने गया था। पिछली रात को ही अमरीका से आयी थीं। मार्च का महीना था। सवेरे के दस बजे थे। मिलने का उद्देश्य था कालीघाट के 'निर्मल हृदय' और दमदम के 'निर्मला केनेडी आश्रम' के कामधाम के बारे में फ़ोटो लेने की अनुमति लेना। सवेरे फ़ोन करने पर माँ ने मिलने को कहा।

दस बजे के वक़्त फाटक के अंदर जाकर देखा कि माँ एक विदेशी सज्जन से बातें कर रही हैं। बाहर एक ऊँची पक्की जगह पर बैठ गया।

पाँच मिनट बाद ही माँ निकल आयीं। विदेशी सज्जन को दरवाज़े तक पहुँचा कर लौटते वक़्त मुझे लेकर कमरे में आयीं। सोचा कि अब पैड लाने के लिए किसी से कहेंगी। पर पैड कहाँ? छोटे काग़ज़ का टुकड़ा मेज़ पर से उठाया। वह देखने में छुटपन में पंडितजी की क्लास से भागकर लॉटरी खेलने वाले काग़ज़ के टुकड़े की तरह था। उस पर ही दो बातें लिखीं। एक पर लिखा, "सिस्टर लूक, प्लीज़

अलाऊ देम टू टेक फ़ोटोग्राफ़्स।"[1] पीछे मुझ प्रार्थी का नाम लिख दिया। दूसरा लिखा सिस्टर बनेयर को—जिन पर दमदम में 'निर्मला केनेडी आश्रम' का दायित्व था। लिखने के बारे में पूछने पर माँ बोलीं, "और क्यों ? बहुत हो गया है।" कोई और बात न कर प्रणाम करके चला आया।

इसी बीच दीवार पर टँगा एक चार्ट देखा। देखने में बहुत बड़े मानचित्र की तरह था। चार्ट में स्पष्ट करते हुए मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़ के कामकाज का एक चित्र खड़ा किया गया था। स्कूलों की संख्या थी 70—इन स्कूलों में पढ़ने वालों की संख्या 6,300 से अधिक थी। 265 क्लीनिक थे। इनमें अभी तक 15,08,178 रोगियों की शुश्रूषा की व्यवस्था हुई थी। 58 कुष्ठ केंद्रों में 46,702 कुष्ठ रोगियों की चिकित्सा होती है। जड़बुद्धि वाले 1,172 बच्चों के लिए 25 होम और मरणोन्मुख 5,105 लोगों के लिए 25 अलग केंद्र मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़ के अंतर्गत हैं।

कलकत्ता में कालीघाट, तिलजला, दमदम, टीटागढ़, आसनसोल, शांतिनगर के सिवा राँची, दिल्ली, झाँसी, आगरा, अम्बाला, अमरावती, भागलपुर, बंबई, रायगढ़ सहित पूरे भारत में 61 प्रतिष्ठान मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़ के अधीन रहकर पीड़ितों की सेवा में लगे हैं। भारत के बाहर स्विट्ज़रलैंड, आस्ट्रिया, वेनेजुएला, फ्रांस, अमरीका, कनाडा, इटली, आस्ट्रेलिया, हॉलैंड, डेनमार्क, माल्टा, इंग्लैंड, आयरलैंड, न्यूज़ीलैंड में 28 प्रतिष्ठानों पर कार्यों का समान दायित्व है।

परित्यक्त, पंगु, असमर्थ, अनाथ, रोगियों के प्राण उनके 'निर्मल हृदय' की स्नेहपूर्ण ममता में आश्रित हुए हैं। 'निर्मल हृदय,' 'शिशु भवन,' 'निर्मला केनेडी केंद्र' तो हैं ही। यक्ष्मा-क्लिनिक, कई दातव्य चिकित्सालय, कॉमर्शियल स्कूल तकनीकी विद्यालय, और क्या नहीं है ! करुणामयी और उनकी हज़ार से अधिक भगिनी मिलकर इस सेवा के संसार को प्रेम के प्रलेप से नित नया करती रहती हैं। माँ के इस विराट कर्मयज्ञ में किस मात्रा में धन खर्च होता है, यह बताना मुश्किल है। लेकिन सब आ जाता है।

अठारह

देश-विदेश में मदर टेरेसा एक नाम है। 'इंटरनेशनल एसोसिएशन ऑफ़ कोवर्कर्स ऑफ़ मदर टेरेसा' के अधीन सारी दुनिया विभिन्न प्रतिष्ठानों से जुड़ी हुई है। इसके

1. सिस्टर ल्यूक, इन लोगों को फ़ोटो लेने दीजिये।

एक चेयरमैन नियुक्त हुए। इसके सिवाय वाइस चेयरमैन हैं। उनकी संख्या बारह-तेरह होगी।

बहुत-से सम्मानों से सम्मानित माँ ने अपने सेवाधर्म के कारण एक के बाद एक पुरस्कार प्राप्त किये। डालर, स्टर्लिंग, रुपयों को मिलाकर करोड़ न हों, उसके आसपास तो कोई संख्या निश्चय ही होगी। 1962 में 'पद्मश्री' मिली। एक ही बरस बाद 'रैमन मैगसेसे अवार्ड' मिला। फिर लंबे नौ बरस के बाद 1971 ई० में वैटिकन सिटी में पोप तेईसवें का 'जॉन पीस प्राइज़' मिला। उसी बरस दो अन्य पुरस्कार—'गुड समैरिटन अवार्ड' और 'जॉन एफ़ केनेडी इंटरनेशनल अवार्ड' भी उन्हें मिले। फिर दूसरे ही बरस 'जवाहरलाल नेहरू पुरस्कार' प्राप्त किया—सन् 1972 में। 1973 में 'टेम्पलटन अवार्ड' मिला। 1974 में 'मैटर एट मैगरेस्ट्रा अवार्ड' मिला।

अंतर्राष्ट्रीय नारी वर्ष के उपलक्ष में मेक्सिको में आयोजित विश्व नारी सम्मेलन में (1975) माँ विशेष अतिथि के रूप में आमंत्रित की गयी थीं। उसी वर्ष अंतर्राष्ट्रीय संस्था एफ़० ए० ओ० के सिरेस पदक के एक ओर माँ टेरेसा की प्रतिमूर्ति, और दूसरी ओर एक कमज़ोर शिशु को दोनों हाथों को बढ़ाकर लिये हुए कोई देवी अंकित की गयी थी। 'शांति के लिए नोबल पुरस्कार' के लिए उनका नाम प्रस्तावित हुआ और 1979 में उन्हें नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

केवल पुरस्कार ही नहीं, शिक्षा संस्थाओं ने भी उन्हें सम्माननीय उपाधियों से विभूषित किया है। इस प्रकार ये सब संस्थाएँ भी कृतार्थ हुईं। 1971 में कैथॅलिक यूनिवर्सिटी ऑफ़ अमेरिका ने दी सम्मानसूचक उपाधि—डॉक्टर ऑफ़ ह्यूमन लैटर्स। और 1976 में विश्व भारती की 'देशिकोत्तम' उपाधि पायी। शांति निकेतन के आम्रकुंज के समावर्तन अनुष्ठान में हमारी प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने उनके प्रशस्त ललाट पर चंदन का टीका लगाया और हाथों में प्रमाणपत्र दिया।

वय के भार से नहीं, पुरस्कारों के भार से ही माँ जैसे झुक-सी गयी हैं। यही है वह नम्रता—माँ के जीवन का परम धर्म। इसीलिए तो हाथों में पुरस्कार थमाते समय सब लोग विनीत भाव से इस महान महिला की निःस्वार्थ सेवा, प्रेम की कहानी स्मरण कर धन्य हो गये थे।

'रैमन मैगसेसे पुरस्कार'(1962) माँ के हाथों में देते समय बोर्ड ऑफ़ ट्रस्टीज़ ने कहा : By her election, the board of trustees recognise her merciful cognizance of the object of poor of a foreign land in whose service she led a new congregation.

इसके दस बरस बाद दिल्ली में 'जवाहरलाल नेहरू अवार्ड फ़ॉर इंटरनेशनल अंडरस्टैंडिंग' मिला। वहाँ भी उसी बात की प्रतिध्वनि थी :

Announcement by Indian Council for Cultural Relations: "Mother Teresa had dedicated herself to the service of the destitute, the uncared for and helpless members of humanity. Such tireless and selfless dedication to so worthy a cause has been seen but rarely. . .in serving selflessly, without narrow considerations of nationality, caste or creed and without expectation of public recognition. Mother Teresa has set an outstanding example of how quiet dedicated effort can contribute to the promotion of goodwill, friendship and understanding among the people of the world."

लंदन में 1973 ई० में 'टेम्पलटन फ़ाउंडेशन प्राइज़ फ़ॉर प्रोग्रेस इन रिलिजन' लेते समय हमें इस महान महिला के मन की बात का पता लगा . "Mother Teresa has been instrumental in widening and deepening man's knowledge and of God and thereby furthering the quest of quality of life that mirrors the Divine."

सबने ही माँ की मानवता के स्पर्श का अनुभव किया। तभी तो माँ को सम्मानित कर मानवता का जयगान किया। मानवता जाति, धर्म, देश की सीमाओं में बँधी नही रहती—यह करुणामयी माँ ने फिर एक बार पूरे संसार को दिखा दिया।

बहुत लोग जानना चाहते हैं कि माँ इतना काम कैसे करती हैं? वक्त कैसे मिलता है? दिन-भर कठिन परिश्रम के बाद सिस्टरें जब सो जाती हैं, इटाली के जोड़ा-गिरजा के पास जब गहरी रात की निस्तब्धता छा जाती है, तब माँ ऑफ़िस का कामकाज शुरू करती हैं। देश के विभिन्न भागों के साथ-साथ बाहर विदेश से भी प्रतिदिन जो चिट्ठियाँ आती हैं, उनका जवाब माँ अपने हाथों से ही लिखती हैं। कितनी चिट्ठियाँ लिखती हैं, इसका किसी को पता नहीं। तरह-तरह की चिट्ठियाँ रहती हैं। किसी के माँ-बाप अचानक मर गये हैं। दुनिया में उसका कोई नहीं है। कुछ लिखना-पढ़ना भी नहीं आता। इसीलिए अंतिम सहारा समझकर माँ को चिट्ठी लिखी है। किसी को कुष्ठ रोग हो गया है। अपने लोग, भाई-बहिन, और तो और, माँ-बाप तक मुँह नहीं देखना चाहते। बस भगा देना-भर रह गया है। दिनोंदिन इस असह्य मानसिक पीड़ा से दुखी किसी युवक ने माँ को चिट्ठी लिखी है। कुष्ठ रोगियों में ग़रीब ही नहीं, धनी-पुत्र भी रहते हैं।

सद्यविवाहित युवती का पत्र भी माँ के मन को हिला देता है। युवती को विवाह के बाद बाप के घर छोड़कर पति-देवता या तो किसी दूसरी औरत या परस्त्री के प्रति आसक्त हैं। युवती के बाप के घर की हालत बहुत ही ख़राब है। किसी तरह चल रहा है। रजिस्ट्री शादी के मामले में शायद कुछ ग़लती रह गयी

थी। इस समाज में ग़रीब युवती को देखने वाला कोई नहीं है। माँ-बाप के लिए भी वह अप्रिय हो जाती है। लाचार होकर 54-ए, आचार्य जगदीश बसु रोड पर माँ को चिट्ठी भेजी। संभव है, माँ कोई रास्ता सुझा सकें।

पंगु, मूक, बधिरों के माँ-बाप के पास से भी तरह-तरह की चिट्ठियाँ आती हैं। न्यूयार्क से एक विश्वविद्यालय के विद्यार्थी ने कलकत्ता में उनसे मिलने की इच्छा व्यक्त कर चिट्ठी लिखी है। या आस्ट्रेलिया से कोई युवती गरमी की छुट्टियाँ उनके पास बिताना चाहती है। माँ के सेवा के कामों को देखना चाहती है। मौक़ा मिलने पर कोई-कोई अपने को सेवा-कार्य में समर्पित भी करना चाहती हैं। छोटी-छोटी बातें होती हैं। हर बात अपने में अलग होती है। लेकिन माँ के लिए ये सभी मूल्यवान हैं। इसीलिए हर चिट्ठी पढ़ती हैं। जवाब भी देती हैं।

यहाँ एक और व्यस्त आदमी की बात याद आयी। वे हैं पश्चिमी बंगाल को बनाने वाले डॉ० विधानचन्द्र राय। मुख्यमंत्री-काल में भी डॉ० राय के पास सामान्य लोगों की अनगिनत चिट्ठियाँ आती थीं। चिट्ठियों को पढ़कर वे बंगाल की नब्ज़ समझते थे। निजी सचिव को बुलाकर कहते, "देखो, इन सब आवेदन भेजने वालों की हम हमेशा तो मदद कर नहीं सकते। लेकिन उनके जवाब दे दो। और हर जवाब के नीचे मेरे दस्तख़त लेना मत भूलना।" केवल शरीर ही नहीं, धरती के प्रति भी उन्हें आकर्षण था।

इसके बाद हैं दुनिया-भर के उनके शाखा-प्रशाखा के पत्रों के जवाब। रात के डेढ़ या दो बजे भी यदि सोने जातीं, सूर्योदय से बहुत पहले ही जाग जाती हैं। इतना परिश्रम करती हैं! लेकिन थकान का कोई चिह्न नहीं। बातचीत या चलने-फिरने में कभी नहीं लगता कि माँ टेरेसा की उम्र पैंसठ बरस है।

सचमुच क्या कभी माँ घबरा भी जाती हैं? एक छोटी-सी गृहस्थी चलाने में हम परेशान हो जाते हैं। उस पर अगर जड़बुद्धि वाले या पंगु या कोई असमर्थ बालक या युवक-युवती हो तो कटे घाव पर नमक छिड़कने की तरह पूरी जिंदगी बर्बाद होने लगती है। डॉक्टरों-वैद्यों से इलाज करवाते-करवाते वह गृहस्थी धीरे-धीरे ढह जायेगी। इसी तरह किसी दिन घर बिगड़ जायेगा। और माँ—जिनकी दुनिया ही पंगु, अनाथ, परित्यक्तों को लेकर है—उनकी क्या हालत हो सकती है, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। एक-दो नहीं—हम दो, हमारे दो की तरह शांति-नीड़ नहीं, हज़ारों बाल-बच्चों का भला-बुरा जिसे देखना पड़ता हो उसे बीच-बीच में तो सोच-विचार में पड़ना ही होता है। वही तो स्वाभाविक है।

उस दुनिया की चाबियाँ माँ के आँचल के खूंट में बँधी रहती हैं। वे ही ख़र्च किया करती हैं। संसार में ख़र्च कम पड़ने पर वे चिंतित हो जाती हैं। मदर टेरेसा का जीवन व्यापक अर्थ में वैसा ही है। धन कहाँ से आयेगा, यह चिंता उन्हें स्वा-

व्यावहारिक रूप से करनी पड़ती है। व्यक्तिगत जीवन में 'रुपया मिट्टी—मिट्टी रुपया' में विश्वास करने पर भी अपने कर्मपक्ष को सफलता की चोटी पर पहुँचा देने के लिए धन की जरूरत भी होती है। लेकिन वास्तविक मूलधन है सेवा, प्यार। यह खजाना खाली हो जाने पर करोड़ों रुपयों से भी कोई काम नहीं होगा। वहाँ तो सेवा का स्पर्श चाहिए, जो धन के बदले में कभी नहीं मिलती।

एक दिन माँ कमरे में बैठी थीं। सहसा पता चला कि शिशु-भवन का खजाना खाली है। उसमें अधेला भी नहीं है। बाजार गये बिना तीन-चार सौ बच्चे भूखे रह जायेंगे। क्षण-भर में नन्हें-नन्हें चेहरे माँ की आँखों के आगे तैर गये। माँ ने सिस्टरों से भिक्षा माँगने के लिए कहा। दूसरों के स्वार्थ के लिए भिक्षावृत्ति ग्रहण करने में कोई रुकावट नहीं है। यीशु के लिए भिक्षा, इससे अधिक अच्छी चीज और क्या हो सकती है? इन सारे अनाथ, परित्यक्त बच्चों को ही तो माँ, सिस्टरें यीशु की तरह प्यार करती हैं। यीशु को कुछ खाने को नहीं मिले—यह बात सोचकर माँ का शरीर सिहर उठता है। इसमें तो सबका अमंगल है। पर-हित के लिए भिक्षावृत्ति में जैसे कोई महत्व छिपा हुआ है।

उन्नीस

कवि की भाषा में 'आपनारे लॅये विव्रत हॅते आसे नाइ केहॅ अवनी परे, सॅकलेर तॅरे सॅकले आमरा प्रत्येके आमरा परेर तॅरे।' (अपने लिए परेशान होने को दुनिया में कोई नहीं आता, सबके लिए सब हैं, सभी एक-दूसरे के लिए हैं)। तभी तो माँ ने यीशु की बात कही। बेथेलहम का वह शिशु जब यीशु हुआ तब कौन आगे बढ़े थे? न, लिखे-पढ़े बाबू नहीं आये। तो क्या वे लोग जो धर्म लेकर खींचतान करते हैं? न, तथाकथित धार्मिक भी नहीं आये। यीशु के धर्म का आलिंगन सबसे पहले बिके हुए दासों ने किया था—जिन्हें हम अशिक्षित मूर्ख रूप में ही जानते हैं।

'मैं भूखा हूँ, मुझे खाना दो। मैं प्यार के लिए पागल हूँ, मुझे प्यार करो।' यही तो यीशु का कहना है। माँ के मुख से तो उसकी ही प्रतिध्वनि है। माँ ने कहा है:

"*Make us worthy, Lord, to serve our fellowmen throughout the world who live and die in poverty and hunger.*"

"Give them through our hands this day their daily bread and by our understanding love, give peace and joy."

(दारिद्र्य और क्षुधा में ही जिनकी जन्म-मृत्यु है हम उन सारे भाई-बहनों

की सेवा के योग्य बनें, हे भगवान् !

हम उनके मुखों में दोनों हाथों से क्षुधा के लिए अन्न दे सकें, बाँट सकें प्यार, शांति, आनंद।)

अंतर कितना कोमल है ! भीतर और बाहर से—दोनों ही समान हैं। वैसा न होने से इतनी सरलता से क्या ऐसी कठिन बात कही जा सकती है ? अनुभूति जब प्रबल होती है तब सब-कुछ ऐसे ही सहज, सुन्दर, सरल हो जाता है। रवीन्द्रनाथ की भाषा में : 'सहज कथा बॅलते आमाय कॅह हे। सहज कथा बॅला जाय कि सॅहजे।' (मुझसे सहज बात कहने को कह रहे हो, सहज बात क्या आसानी से कही जा सकती है ?)। हृदय जब रुई की तरह कोमल होता है तो फिर कठिन, कठिन नहीं रह जाता। माँ के साथी सेवक-सेविकाओं की प्रार्थना का आरंभ तो इसी से है। आमॅन के (Amen) अंतिम अंश का यह उद्धरण है :

"Lord, make me a channel of the peace, that where there is hatred, I may bring the spirit of Forgiveness;
that where there is discord, I may bring Harmony;
that where there is error, I may bring Truth;
that where there is doubt, I may bring Faith;
that where there is despair, I may bring Hope;
that where there are shadows, I may bring Light;
that where there is sadness, I may bring Joy;
Lord, grant that I may seek rather to comfort,
than to be comforted
to understand,
than to be understood
to love
than to be loved, for
it is by for giving that one is forgiven
it is by dying that one awakens to eternal life."

(हे ईश्वर, मुझे अपना शांतिवाहक बनने दो। स्नेह के प्रलेप से घृणा छूट जाये। जहाँ अन्याय, अविचार हों वहाँ मैं क्षमा का माधुर्य बिखेर सकूँ। मैं विच्छेद में मिलन का स्वर गुंजरित कर सकूँ। जहाँ भूल है वहाँ मैं सत्य को स्थापित कर सकूँ, जहाँ संदेह है वहाँ मैं विश्वास ला सकूँ। अंधकार में प्रकाश दिखा सकूँ; जहाँ दुख है वहाँ मैं आनन्द ला सकूँ।

(क्षमा करने में ही तो मुक्ति का स्वाद निहित है। क्षमा करके ही तो

हम अपने को मुक्त कर सकते हैं। मृत्यु ही तो हमें अमृतलोक में ले जाती है।)

और कुछ नही। माँ ने इस प्रार्थना को ही जीवनसाथी बनाया है। मिशनरीज़ ऑफ चैरिटीज के पच्चीस बरस पूरे होने के उपलक्ष में किसी-किसी प्रार्थना-सभा में माँ का दर्शन-लाभ हुआ है। कोई बाहरी चमक-दमक नही। बिना आडंबर के इन धार्मिक अनुष्ठानो में माँ को अपनी बात कहने मे तीन-चार मिनट लगे। हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, पारसी, बौद्ध—माँ सब जगहो पर गयी। न, ईसाई धर्म के प्रचार के लिए नही, सेवा के आदर्श की बात उठाना ही मिशनरीज ऑफ़ चैरिटीज़ का मूल उद्देश्य है। हिंदू स्त्रियों की तरह घुटने मोड़ बैठकर, खड़े रहकर, या कही झुके रहकर माँ इन सब सभाओं में प्रार्थना के लिए बैठी हैं। शात स्वर मे माँ की वाणी सुनने मे किसी को अधीर होने की जरूरत नही होती। कोई उपदेश नही, केवल प्रार्थना करती हैं।

क्यों, माँ ने स्वय ही तो कहा है, "प्रार्थना हृदय को विस्तृत करती है, ईश्वर की शक्ति का पथ दिखाने के लिए।"

किन्तु पथ दिखा देने की बात कह देने से ही तो पथ की खोज नही हो जाती! उन्हे खोजना पड़ेगा। ठीक से पुकारना होगा। इसी प्रकार से उस शुभ मुहूर्त का उदय होगा। ईश्वर की अनुभूति होगी। अपना जानना काफी नही होगा—इस तरह से अपने को जितना ही जानते हैं उतना ही और जानने के लिए उत्सुकता हमारे मन में प्रबल हो उठती है। अपने को जानने का अर्थ ही तो अपनी सत्ता का अनुभव करना है। इसी तरह तो जीवात्मा के साथ परमात्मा के मिलन का द्वार हमारे निकट उन्मुक्त होता है।

तभी तो बड़ा बाज़ार जैन मदिर की उस दिन की प्रार्थना-सभा के अत का वह दृश्य अब भी आँखो के आगे तैर उठता है। सवेरे के दस बजे। दुमजिले के कमरे में प्रार्थना समाप्त कर माँ सीढ़ियाँ उतर रही थी। पीछे भक्त लोग थे। यह लेखक भी माँ के पास खड़ा था। नीचे उतरते ही माँ की स्टेशन-वैगन गाड़ी थी। मिशनरी संन्यासिनियाँ पीछे के दरवाजे से अदर बैठ गयी। माँ ने गाडी पर चढ़ते-चढते अचानक जैसे कुछ देखा। बैठ गयी। एक बीमार अधेड़ महिला को पकडकर बँगला में बोली, "तुमको देखने वाला कोई नही है? यहाँ रुको, हमारे आदमी आकर तुम्हें ले जायेंगे।"

मालूम नही कि माँ की संन्यासिनियाँ महिला को बाद में आकर ले गयी या नही, लेकिन उस दिन की प्रार्थना-सभा मे सम्मिलित होने से मेरा जीवन धन्य हो गया। इतना समझा कि माँ के प्यार के पात्र सारे दीन-दुखी लोग हैं। दीन-दुखियों के सपर्क मे आने से ही जैसे हम माँ को, माँ के वास्तविक रूप को, देख सकते हैं। माँ की गोद में दुबला-पतला बच्चा है—दृश्य कितना भी करुण क्यो न हो, देखने पर किंचित खुशी होती ही है।

कालीघाट में 'निर्मल हृदय' में एक अध्यापिका संन्यासिनी से बातें हुई थीं। माँ के आदेश से इस युवती संन्यासिनी को मनीला भेजा गया। बात-बात में संन्यासिनी ने बताया, कहीं भी संन्यासिनी या सिस्टर को भेजने के पहले माँ खुद ही वहाँ जाती हैं। पहले वहाँ जाकर माँ देखती हैं कि शहर में बस्तियों में रहने वालों की संख्या कितनी है? जो अनाहार, अर्धाहार हैं, उनकी संख्या कितनी है? यह सब समझ-बूझकर ही माँ मिशनरीज ऑफ़ चैरिटीज के केंद्र की स्थापना करती हैं।

सुख-दुख, व्यथा, वेदना—सब-कुछ प्रार्थना के समय ईश्वर के आगे निवेदन कर सकना ही तो सच्चा आनन्द है। समस्या में पड़ जाने पर उसका समाधान भी ईश्वर से माँगना पड़ेगा। बच्चा जिस तरह माँ के आगे रो-रोकर अपनी माँग रखता है, उसी तरह ईश्वर के आगे आकुल होकर प्रार्थना करने पर वह कुछ व्यवस्था तो करेगा ही। हर चीज विश्वास से प्राप्त हो जाती है और तर्क से बहुत दूर हो जाती है। माँ के जीवन में यह बात अक्षर-अक्षर मिलती है। इसीलिए तृष्णा को जिलाये रखना चाहिए।

संसार के भौगोलिक मानचित्र से शायद यह मानचित्र कुछ भिन्न है। माँ का अपना अलग संसार है। उनका मानचित्र अलग है। वेनेजुएला में उन्होंने सुना कि परित्यक्त शिशुओं की संख्या बहुत है, और वह क्रमशः बढ़ती ही जा रही है। सुनते ही माँ का हृदय रो पड़ा। साथ ही उनका हृदय वहाँ चला गया। आहिस्ता-आहिस्ता वेनेजुएला में काम शुरू हुआ। फिर शायद पोप के आगे रोम के दुखी मनुष्यों के कष्टों की कथा ने माँ के हृदय को स्पर्श किया। दौड़ीं वहाँ के लिए। हरदम माँ, सिस्टरें सेवा के लिए यथासाध्य हाथ बढ़ा देती हैं।

अमरीका, इंग्लैंड, फ्रांस अफ्रीका—कहीं भी क्यों न जायें, माँ का हृदय कलकत्ता में पड़ा रहता है। कलकत्ता में दीन-दुखियों के बीच उन्हें जो आनंद मिला है वह उनके निकट स्वर्गिक है। दीन होते हुए भी ये दैन्य नहीं हैं—यह सहज सत्य जिस प्रकार माँ ने समझा है वह हमारी तरह के तथाकथित शिक्षित भी अच्छी तरह समझे हैं या नहीं, इसमें संदेह है। या घुमाकर कहा जा सकता है कि समझने की कोशिश नहीं की। कलकत्ता उनको सबसे अधिक प्रिय है।

बीस

बस्ती-बस्ती में, कुष्ठ आश्रम में, रोगी की शैया के पास, कालीघाट के मुमूर्षु लोगों

के सिरहाने खड़े—माँ के साथ घूमने से समझ में आता है कि माँ इनके कितने निकट की व्यक्ति हैं। माँ आयी हैं। उनके लिए यही बहुत कुछ है। माँ को काम नही करना होगा। बात करने की भी जरूरत नहीं। माँ उनके बीच आकर खड़ी हैं—यही खबर काफी है।

सिर्फ़ यही लोग नहीं, सिस्टरें भी माँ से दो दिन न मिलें तो परेशान हो जाती हैं। जो सिस्टर कलकत्ता के बाहर रहती हैं उन्हें माँ का अभाव सबसे अधिक खलता है। पूरे बरस राह देखती रहती हैं। इतनी व्यस्तता के बीच माँ के लिए हर बरस सब केंद्रों में जाना सभव नहीं होता। कलकत्ता के बाहर दूसरे किसी राज्य मे जाने पर सिस्टर माँ से पहले ही पूछती हैं, "मदर व्हेन आर यू विज़िटिंग अस नेक्स्ट ?" (फिर हमारे यहाँ आप कब आ रही हैं ?)

दवा खाने से बीमारी हटती है। नियम से खाना मिलने पर सभी सबल, स्वस्थ हो जाते हैं। अस्पताल मे, नर्सिंग होम मे यह होता रहता है। किन्तु प्यार ! इस प्यार के स्पर्श के बिना सब व्यर्थ है। माँ का संसार तो प्यार का ही संसार है !

वैसा न होने पर ? देखिये, उस दिन की बात। पैंसठ वरस की यह महिला बस्तियों के रहने वालो के साथ सडक पर निकल पडी। यात्रा शुरू हुई, गोल पार्क में, रामकृष्ण इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर भवन के पास से। सवेरे के नौ बजे होंगे। इतवार का दिन था। विवेकानद की संगमरमर की मूर्ति के पास माँ खडी थी। सामने कई हज़ार बस्ती में रहने वाले लोग थे। जुलूस में स्कूल-कॉलेज के तमाम छात्र-छात्राएँ भी थे। सबके हाथों में फेस्टून थे, "कलकत्ता के दीन-दरिद्र बस्तीवासियों का कल्याण, आपका-मेरा, सबका कल्याण है।" माँ ने सदा की तरह दो मिनट में बोलना समाप्त कर दिया। एक खुली जीप मे माँ थी। पीछे की सीटो पर माँ के मिशन की दो सिस्टर थी—सिस्टर अग्नेस और सिस्टर फ्रांसिस। माँ के पास जीप मे मेरे लिए भी जगह थी। दूसरी ओर दो मंत्री बैठे थे।

जीप चलने लगी। माँ खुली जीप मे लोहे का डडा पकडे खडी रही। हम माँ के चरणो मे बैठे रहे। पीछे हज़ारो आदमी थे। बस्ती के आदमी थे, शहर के पढ़े-लिखे लोग थे, छात्र, युवक, घर की महिलाएँ—सभी स्तरो के लोग इस पदयात्रा में थे। कोई नारे नही थे, न कोई उत्तेजना थी। गडियाहाट के मोड़ को पीछे छोड़-कर रासबिहारी एवेन्यू की ओर जाते समय देखा कि सड़क के दोनों ओर छतों पर, छज्जों पर उत्सुक लोगो की भीड है। कभी हाथ हिलाकर, कभी हाथ जोड़कर माँ उनकी उत्सुकता शात करने में व्यस्त थीं। माँ को लेकर कलकत्ता के राजपथ पर इतना बड़ा जुलूस कभी निकला हो, यह मुझे नही याद पडता।

माँ की जीप का चालक किसी तरह स्टीयरिंग पकड़े बैठा है। [illegible] सिवा उसे शायद और कोई काम न था। पीछे मे युवक लोग रथ की [illegible]

जीप को ढकेलकर ले चले। लगभग दो मील तक आने के वाद हाजरा रोड के निकट भीड़ विखर गयी। सामने लोरेटो की संन्यासिनियों को पैदल चलते देखकर सिस्टर अग्नेस और सिस्टर फ्रांसिस जीप से उतर पड़ीं। उन्होंने भी पैदल चलना शुरू किया। हम भी उतर पड़े।

माँ ने खुद भी उतरना चाहा। लोरेटो की संन्यासिनियाँ इस धूप की उपेक्षा कर पैदल चल रही हैं। देखकर मन में अजीव-सा लगा। जनता के अनुरोध से माँ नीचे न उतर सकीं। वीच-वीच में पीछे घूमकर जुलूस देख रही थीं। एक वार एक स्वयंसेवक को वुलाकर जानना चाहा कि जुलूस का पिछला हिस्सा कहाँ है? जुलूस एलिगन रोड, जवाहरलाल नेहरू रोड होकर जव विक्टोरिया मेमोरियल हॉल के पास आ पहुँचा उस समय सूर्य आसमान के वीचोंवीच था। श्री अरविन्द की मूर्ति के नीचे खड़े होकर माँ ने कहा, "सवको प्यार करके ही हम भगवान के पास पहुँच सकेंगे। इसके सिवा किसी और राह से वहाँ पहुँचा जा सकता है या नहीं, वह मुझे नहीं मालूम।" माँ के मुँह से वह वात सुनने के वाद जुलूस के लोगों ने वह जगह छोड़ दी। जीप पर जाते-जाते माँ वोलीं, "मनुष्य ही सव-कुछ है।" जुलूस को देखकर माँ का हृदय भी वहुत आनन्दित हुआ था।

चौरंगी के पास आकर एक वैंक की होर्डिंग पर नजर गयी। उस पर अँग्रेजी में लिखा था: "कैलकटा इज़ फ़ॉर एवर।" (कलकत्ता सदा रहेगा)। लेकिन यह लिखना ही तो सव-कुछ नहीं है। चौरंगी के नियोन प्रकाश में कलकत्ता का वास्तविक स्वरूप समझ में न आ सकेगा। कलकत्ता को समझने के लिए ग़रीव-से-ग़रीव आदमी के पास जाना पड़ेगा। यह वात अस्वीकार नहीं की जा सकती कि जॉव चार्नक के प्रायः चार सौ वरस पुराने इस शहर में भारत के देशप्रेमियों ने तरह-तरह से मानव का जयगान गाया है। उपेक्षित, प्रपीड़ित लोगों की वात वहुतों ने उठायी है। उससे काम भी वहुत हुआ है। लेकिन अव भी वहुत करने को है।

इस कलकत्ता में तमाम लोग आये। सात समुद्र तेरह नदी पार से घूमने आकर दो-चार पंक्तियाँ लिखकर हस्ताक्षर करके चले गये। किसी के मत से किसी का कोई मेल नहीं है।

1803 ई० में लॉर्ड वेलेन्सिया ने लिखा: 'चौरंगी प्रासादों का गाँव है। कुल मिलाकर मनोहर दृश्य है। जीवन में ऐसा कभी नहीं देखा।"

1863 ई० में जॉर्ज ट्रेवलियन ने कहा था: 'इस तरह की दूसरी निकम्मी जगह खोजने पर भी कैसे मिल सकती है? इस शहर का स्वाभाविक चरित्र ऐसा ख़राव है कि उसे और ख़राव करने में आदमी को ज्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ेगी। जो कुछ यहाँ सामान्य है वह भी थोड़े-से असामान्य प्रयत्न से हो रहा है।'

उसके एक सौ वरस पहले क्लाइव ने लिखा था: 'संसार की सवसे अधिक ख़राव जगह।'

वॅटिक ने कहा : 'आश्चर्यजनक सुंदर दृश्यावली—मैग्निफिशेंट !'

बिशप हिबर सोचते हैं : कलकत्ता मास्को है। मेरे पास मास्को के जो कई-एक प्रिंट हैं, वे हू-ब-हू चीना बाज़ार और क़साई टोले जैसे हैं।

एक और साहब ने लिखा है : 'गर्मी का कलकत्ता मानो कारागार हो, सांस घुट जाती है।

एक दूसरे साहब की राय है लंदन यंत्रणापुरी है, स्वर्ग से लगे सुधार-गृह के समान, कलकत्ता साक्षात स्वर्ग है।

विलियम हंटर ने अपनी मित्र को लिखा : 'कल्पना करो कि प्रकृति में जो कुछ गौरवपूर्ण है उसके साथ स्थापत्य मिल गया है, वैसा होने पर तुमको ठीक-ठीक तसवीर मिल जायेगी।' (इसमें संदेह नहीं कि उस समय हंटर प्रेम में पड़े थे।)

उन्नीसवें शतक के अंत में विन्स्टन चर्चिल ने अपनी मां को लिखा था : 'मुझे ख़ुशी है कि कलकत्ता देख लिया। ख़ुशी—पिता जिस कारण से लिस्बन देखकर ख़ुश हुए थे, उसी एक कारण से, भविष्य में देखने की फिर कोई जरूरत न होगी। ...लोग समझते हैं कि कलकत्ता में सब-कुछ इनइंटरेस्टिंग है।'

मार्क ट्वेन 1896 ई० में आये थे। होटल कांटिनेन्टल में ठहरे थे। कुल दो-तीन दिन के लिए आये थे। बाबू 'ओनोकूल चुन्दर मुख़ार्जी' और बंगालियों के बारे में कुतूहलजनक बातें सुना गये। स्मारक देखने की बात भी सुनायी। किंतु भ्रमण-वृतांत में कलकत्ता से अधिक दूसरे शहरों की ही प्रसिद्धि अधिक है। कलकत्ता में उनकी बहुत दिनों पहले खोयी हुई एक मित्र से मुलाकात हुई थी। किंतु ताज्जुब की बात है कि उन दोनों में बातें करने की चीज थी सूखी हेरिंग मछली।

किपलिंग कलकत्ता में थोड़े ही अर्से के लिए आये थे। वे राजभवन के सामने ग्रेट ईस्टर्न होटल में रहते थे (जो आजकल सरकारी नियंत्रण में है)। वे लाहौर के सिविल ऐंड मिलिटरी गज़ेट के लिए हुगली नदी में पाइलटों के बारे में लेख भेजा करते थे। रात में पुलिस के वाइस-स्क्वाड के साथ सारा शहर घूमते-फिरते, रात का कलकत्ता देखते थे। यह शहर उनके निकट छोटे अविचारों और बड़े पापाचारों का शहर था।

वय के हिसाब से रोम या वाराणसी के साथ कलकत्ता की कोई तुलना ही नहीं है। और तो और, कलकत्ता न्यूयार्क से भी इक्यासी बरस छोटा है। मान्ट्रियल भी उससे पचास बरस बड़ा है। और कलकत्ता विशाल शहर है। उसमें तीस लाख लोगों का निवास है। वृहत्तर कलकत्ता में अस्सी लाख लोग रहते हैं। किसी काल में कलकत्ता अगर 'ब्रिटिश साम्राज्य का द्वितीय नगर था,' तो वह अब भी दुनिया का चौथा नगर है। टोकियो, लंदन, न्यूयार्क—इन सभी के बाद कलकत्ता ही है। यह बड़ा भारी शहर वास्तव में समस्याओं का नगर है। कलकत्ता 'प्रॉब्लम सिटी' है। कलकत्ता तीसरी दुनिया का जीता-जागता प्रतिबिंब है। यहां एक ओर जहां

प्रासादों के समान अट्टालिकाएँ हैं, वहीं दूसरी ओर सीमाहीन ग़रीबी है। शरीर पर तरह-तरह के गहने पहनने पर भी कलकत्ता की ग़रीबी छिपी नहीं रहती।

किपलिंग द्वारा वर्णित यह कलकत्ता अब भी जीवित तो है ही, किंतु उसमें विपरीत चीज़ें और बढ़ गयी हैं। कलकत्ता के प्रति वर्गमील में 1,02,010 लोग रहते हैं। इस शहर के कम-से-कम तीन हिस्से में से एक हिस्सा लोग बस्तियों में रहते हैं। इस शहर में सौ में से 64 लोगों को अक्षर-ज्ञान नहीं है। चार लाख लोग बिलकुल बेकार हैं। आजकल यह संख्या दुगुनी होगी। 42 हज़ार पाखाना उठाने वाले हैं। फुटपाथों पर 30 नहीं, 70 हज़ार लोग सोते हैं। कुष्ठ रोगी 40 हज़ार हैं। भिखारी 60 हज़ार या 1 लाख? ज्योफे मूरहाउज़ के 'कैलकटा' संबंध में 'श्री पान्थ' की सम्मति के साथ उस रचना में कलकत्ता का यह चित्र आज भी बहुत कुछ सही है।

अँग्रेज लिखते हैं—जहाँ यूरोपियन होंगे वहीं भिखारी होंगे। मानो एक दूसरे ही हैमलीन में एक दूसरा बाँसुरी वाला हो। शराबी जिस तरह लैंपपोस्ट का उपयोग करते हैं, ठीक उसी तरह परिसंख्या को पकड़-पकड़ कर 'सबसे अधिक जानकारी' की ओर विदेशी दर्शक आगे बढ़े हैं। यहाँ ग़रीबी दिखायी पड़ती है, अनुभव की जाती है, गंध नाक में खींची जाती है। चिड़ियाघर का हाथी यहाँ अपने लिए खाना नहीं, महावत के लिए सूँड़ से पैसे उठाता है। और महावत फिर भी वेतन पाता है। सौ गज दूर नाली के पास ईंट रखकर मिट्टी की हँडिया में अखाद्य पकता है, पास ही आलोकित अक्षरों में विज्ञापन लिखा है—उपहार के लिए इस नरम बिस्तर की बात सोची है? आदमी चमगादड़ की तरह बस में लटकता है, विज्ञापन करता है—बी सी टेंडरनेस, परखकर देखो।

सी० एम० डी० के काम-काज की देखभाल के लिए विश्व बैंक के चेयरमैन राबर्ट मैकनमारा भी कई बार इस शहर में आये हैं। फिर आ रहे हैं।

इतना होने पर भी कलकत्ता कलकत्ता है। इस कलकत्ता को केंद्र बनाकर माँ टेरेसा के प्यार का संसार आज सारे विश्व मे छितरा हुआ है। एक जाति, एक प्राण, एकता—इस मंत्र में दीक्षित माँ सारे जीवों में परम करुणामय को देखती हैं।

जुलूस में माँ के साथ दो मंत्री थे। उनमें एक थे सी० एम० डी० के अवकाश-प्राप्त पूर्वकालीन मंत्री बैरिस्टर भोला सेन और दूसरे भूतपूर्व केंद्रीय मंत्री शंकर घोष थे। बस्ती के रहने वालों का यह वर्णन-योग्य जुलूस सचमुच कलकत्ता शहर में अपूर्व था।

झंडियाँ, फेस्टून लेकर इस शहर में बहुतेरे जुलूस निकले हैं। इसीलिए तो स्वर्गीय प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कलकत्ता को 'जुलूसों का शहर' कहा था। अधिकांश राजनीतिक जुलूस होते हैं। तरह-तरह के अधिकारों की माँग करने वाले जुलूस होते हैं। किंतु मदर टेरेसा के उस दिन के जुलूस में किसी अधिकार

की बात न थी। न थी कोई कोरस-ध्वनि। उस नीरव पद-यात्रा का अधिकार कहने को एक चीज ही थी, और वह थी मनुष्य के प्रति मनुष्य का प्यार। वह प्यार केवल जुलूस में नहीं रहता, और न रहता है किसी जोश दिलाने वाले भाषण में। इसके लिए प्यार-भरा हृदय चाहिए। हृदय यदि उस प्रकार तैयार न हो तो हज़ार विज्ञापन करने से भी कलकत्ता को प्यार न किया जा सकेगा। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है, "किसी के लिए कुछ करने के लिए अनुभूति चाहिए।" वह अनुभूति जाग्रत न होने से कोई अच्छा काम करना संभव नहीं है। भगवान तो इन सब उपेक्षित, अनाथों के भीतर सहज रूप से प्रकाशित होते हैं। भगवान का साक्षात पाने के लिए इनके निकट आना होगा।

उस दिन शायद किसी उत्सव का दिन था। मदर को हाथ में दूध के पाउडर के पैकेट लेकर बाँटते देखा। शिशु-भवन के आगे सैकड़ों औरतें थी—सभी गरीब थीं। ज्यादातर इंटाली मुहल्ले की थी। शिशु-भवन में शिशुओं को देखकर कभी नहीं लगेगा कि वे बिना माँ-बाप के हैं। सिस्टर अग्नेस बोली, "हमारे यहाँ एक दिन एक पितृ-मातृहीन बच्चे की वृद्धा दादी आयी। वृद्धा माँ के पास आयी थी। वृद्धा की अंतिम इच्छा थी कि माँ बच्चे को गोद ले लें। बच्चे को शिशु-भवन में ले लिया गया। बच्चे ने स्कूल-फ़ाइनल परीक्षा पास की। उसके बाद कुछ लिखना-पढना किया। अब हावडा में युवक ने 'ब्रदर्स' में अपना स्थान बना लिया है। बचपन में माँ के प्रश्न के उत्तर में लड़का कहता कि बडे होकर वह माँ की तरह बनेगा। माँ ने उसकी आशा पूरी की। वह युवक अब पादरियों का काम करता है।"

यह सारे पितृ-मातृहीन शिशु जब बड़े होते हैं तो उनमें से बहुतों की शादी कर दी जाती है। माँ ने एक दिन एक लडके को पेड के नीचे चुपचाप बैठा देखा। लड़के के माँ-बाप नहीं थे। चाचा के पास रहता था। चाचा-चाची उससे घर का सारा काम कराते थे। लड़का काम करते-करते थक जाता। इतना करने पर भी उसे भरपेट खाने को न मिलता। इसी से एक दिन चाचा के घर से भाग आया। भीख और चोरी—इन दो का सहारा लेकर दर-दर भटकने लगा। इस हालत में लड़के पर माँ की नज़र पडी। माँ उसे आचार्य जगदीश बसु रोड के शिशु-भवन में ले आयी। लडके ने लिखना-पढना शुरू किया। तकनीकी स्कूल में भर्ती हो गया। इस प्रकार उसका नया जीवन शुरू हुआ। अब वह बडा हो गया है। काम करता है। काम सीखते ही लडके ने शादी करना चाहा। लेकिन माँ इतनी जल्दी शादी के पक्ष में नहीं थी। माँ ने एक दिन लडके को पास बुलाकर कहा, "तुम इतनी जल्दी शादी क्यों करना चाहते हो?" लडका बोला, "मैं इस तरह अकेले जीवन कब तक बिताऊँगा? अपना कहने को मेरा कोई नहीं है।" शादी के सिलसिले में मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़ ने दो लडके गाँव भेजे। लडके को बहू के

लिए कपड़े-लत्ते ख़रीद कर दिये गये। माँ ने उसे एक टुकड़ा ज़मीन भी ख़रीद कर दे दी। मकान तैयार न होने तक लड़का ससुराल में ही रहेगा।

यह एक लड़की की कहानी है। लड़की के किशोरावस्था पार करते-न-करते माँ चल बसी। पिता ने फिर ब्याह कर लिया। सौतेली माँ उसे हमेशा डाँटती रहती, मारपीट की भी अकसर नौबत आ जाती। एक दिन उसने सुना कि सौतेली माँ उसके पिता से कह रही थी, 'तुम मुझे चाहते हो या अपनी लड़की को चाहते हो?' इसके कुछ बाद ही दूकान जाने का बहाना कर पिता उसे लेकर रेलवे स्टेशन पर गया। प्लेटफ़ार्म पर यात्रियों की भीड़ में उसे अकेला छोड़कर चला गया। लड़की ने बहुत देर तक प्रतीक्षा करने के बाद रोना शुरू किया। पिता लौटकर नहीं आ रहे हैं, यह देखकर उसका रोना बढ़ गया। सिस्टरें इस हालत में लड़की को शिशु-भवन ले आयीं। बड़ी होने पर उसकी शादी का प्रबंध हुआ। एक अच्छे-से युवक से उसका विवाह हुआ। माँ ने दहेज के रूप में उसे एक टुकड़ा ज़मीन और एक छोटा-सा घर दिया। दाम्पत्य जीवन में वे दोनों सुखी हैं। चार-पाँच लड़के होने के बाद युवती के पति को टी० बी० हो गयी। अब उस महिला के लिए कुछ काम का प्रबंध किया जा रहा है। माँ का कहना है, "वह हमारी संतान है।" दुख का अंत नहीं है।

इक्कीस

आप कितने ही धनी, आभिजात्य क्यों न हों और आपकी उम्र जो भी हो, माँ चाहने पर आपसे कोई भी काम करा सकती हैं। अन्य दूसरे गुणों के साथ यह भी माँ का अपना गुण है। कलकत्ता के अभिजात वर्ग को भी माँ ने आंदोलित किया है। बहुत दूर देश के धनी घरों के लड़के-लड़कियों ने अपने टिफ़िन के पैसे बचाकर कलकत्ता में मिशनरीज ऑफ़ चैरिटीज के पते पर भेज दिये। बड़े नकचढ़े, जो किसी तरह संतुष्ट नहीं होते—इस तरह के नख़रे वाले ब्यूरोक्रेट भी माँ के प्रभाव-से अजीब-से हो जाते हैं। आराम से लाल फ़ीते की गाँठ खोलने में उन्हें ज़रा भी संकोच नहीं होता। भारत में आकर विदेशी पर्यटक लोग ताजमहल, अजन्ता, ऐलोरा, बेलूड़ मठ, दक्षिणेश्वर काली मंदिर देखने के लिए जितने उत्सुक रहते हैं, मदर टेरेसा को देखने का आकर्षण भी उन्हें कम नहीं होता। वे मौलाली में मिशनरीज ऑफ़ चैरिटीज के भवन में जाते हैं। माँ से मिलकर प्रायः सभी माँ के हाथों में कुछ-न-कुछ सहायता के रूप में रख देते हैं। फिर हर पैसे को यक्ष के धन की तरह जो संजोये रखते हैं वे व्यवसायी भी, पहले जिस संस्था की सहायता

करना चाहते हैं वह है—मिशनरीज ऑफ़ चैरिटीज । कोई जादू-टोना नही है। रात-दिन जब कभी जायें तो देखेंगे कि नीले किनारे की साडी पहने सारी सिस्टरें रोगियों के सिरहाने बैठी, पंगुओं की परिचर्या में व्यस्त, भूखों को अन्नदान या किसी अनाथ को आश्रय देने मे लगी रहती हैं। बातें कम, काम अधिक—इस उद्देश्य मे विश्वास करने वाली सिस्टरों को जब राह में चलते देखता हूँ तो लगता है कि ये चल नही रहो, दौड़ रही हैं। कोई सवाल करने पर उनका जवाब, जहाँ तक संभव हो, संक्षिप्त रहेगा।

बातो में और काम में कोई अलगाव नही है। सिस्टरों या ब्रदर लोगों का कामकाज देखकर ही आसानी से समझ मे आता है। युद्ध-क्षेत्र में सम्मुख-समर में मृत्यु की बाजी रख युद्धरत स्वदेश-प्रेमी सैनिकों से 'होम फॉर डाइग डेस्टिट्यूट' के सिस्टर और ब्रदर लोगो के काम की तुलना हो सकती है। सैनिकों की तरह इन सिस्टरों में भी साहस, धैर्य, आत्म-त्याग, देश और जनता के प्रति प्यार रखने वाला हृदय है। एक मनुष्य के हृदय और दूसरे मनुष्य के हृदय मे आकर्षण सभव है। किन्तु हृदय-परिवर्तन ? हाँ, वह भी संभव है। दस्यु रत्नाकर को राम-नाम लेने का अधिकार प्राप्त हुआ था। 'मरा-मरा' कहते-कहते वह एक दिन राम नाम पर पहुँच गया। इसीलिए तो बाहर सडक पर दुर्गंध-भरे, मुमूर्षु, किसी भिखारी को देखकर जो व्यक्ति नाक सिकोड़कर दूर हट गये हैं, ऐसे लोगों को भी 'निर्मल हृदय' में रोगियो की परिचर्या करते देखा गया है। पूछने पर जवाब मिला, "यहाँ आने के बाद अदर का मनुष्य जाग उठता है।"

सिस्टरों के निकट एक दिन जानना चाहा था, "यहाँ ऐसे रोगी, दुर्गंधमय, गलित, मृतप्राय लोगो मे रहकर सेवा करने मे बुरा नही लगता ? बीच-बीच में परिवेश असहनीय नही लगता ?" सिस्टरों के चेहरे पर मुसकान खेल गयी। "न, कष्ट क्यो होगा ? मैं जब किसी रोगी की सेवा करती हूँ तो, वास्तव में, इस प्रकार हम भगवान की ही सेवा करते हैं। किसी मरते हुए भूखे को अपने हाथो से खिला देते हैं तो हमें लगता है कि यीशु को खिला रहे हैं। वह अनिर्वचनीय आनन्द होता है। हमें इस काम को करने मे सचमुच खुशी होती है।"

बीच-बीच मे रुकावट आती है। लेकिन उन सारी समस्याओ का समाधान ऐसे ढंग से हो जाता है कि सोचा नही जा सकता। और ये अमानवीय घटनाएँ इतनी होती है कि बहुत लोगो को यह सोचना पड जाता है कि माँ के साथ भगवान का ही हाट लाइन[1] पर कोई सपर्क है। धन के अभाव से एक बार अनाथ बच्चो के आश्रय-स्थान शिशु-भवन मे बडे दिन का उत्सव बद होने वाला था। और जो जन्म से ही वचित हैं उनके लिए इस उत्सव का एक विशेष महत्व है। जब सब लोग

1. सीधा सपर्क।

लिए कपड़े-लत्ते ख़रीद कर दिये गये। माँ ने उसे एक टुकड़ा ज़मीन भी ख़रीद कर दे दी। मकान तैयार न होने तक लड़का ससुराल में ही रहेगा।

यह एक लड़की की कहानी है। लड़की के किशोरावस्था पार करते-न-करते माँ चल बसी। पिता ने फिर व्याह कर लिया। सौतेली माँ उसे हमेशा डाँटती रहती, मारपीट की भी अकसर नौबत आ जाती। एक दिन उसने सुना कि सौतेली माँ उसके पिता से कह रही थी, 'तुम मुझे चाहते हो या अपनी लड़की को चाहते हो?' इसके कुछ बाद ही दूकान जाने का बहाना कर पिता उसे लेकर रेलवे स्टेशन पर गया। प्लेटफ़ार्म पर यात्रियों की भीड़ में उसे अकेला छोड़कर चला गया। लड़की ने बहुत देर तक प्रतीक्षा करने के बाद रोना शुरू किया। पिता लौटकर नहीं आ रहे हैं, यह देखकर उसका रोना बढ़ गया। सिस्टरें इस हालत में लड़की को शिशु-भवन ले आयीं। बड़ी होने पर उसकी शादी का प्रबंध हुआ। एक अच्छे-से युवक से उसका विवाह हुआ। माँ ने दहेज के रूप में उसे एक टुकड़ा ज़मीन और एक छोटा-सा घर दिया। दाम्पत्य जीवन में वे दोनों सुखी हैं। चार-पांच लड़के होने के बाद युवती के पति को टी० बी० हो गयी। अब उस महिला के लिए कुछ काम का प्रबंध किया जा रहा है। माँ का कहना है, "वह हमारी संतान है।" दुख का अंत नहीं है।

इक्कीस

आप कितने ही धनी, आभिजात्य क्यों न हों और आपकी उम्र जो भी हो, माँ चाहने पर आपसे कोई भी काम करा सकती हैं। अन्य दूसरे गुणों के साथ यह भी माँ का अपना गुण है। कलकत्ता के अभिजात वर्ग को भी माँ ने आंदोलित किया है। बहुत दूर देश के धनी घरों के लड़के-लड़कियों ने अपने टिफ़िन के पैसे बचाकर कलकत्ता में मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़ के पते पर भेज दिये। बड़े नकचढ़े, जो किसी तरह संतुष्ट नहीं होते—इस तरह के नख़रे वाले ब्यूरोक्रेट भी माँ के प्रभाव-से अजीब-से हो जाते हैं। आराम से लाल फ़ीते की गाँठ खोलने में उन्हें ज़रा भी संकोच नहीं होता। भारत में आकर विदेशी पर्यटक लोग ताजमहल, अजन्ता, ऐलोरा, वेलूड़ मठ, दक्षिणेश्वर काली मंदिर देखने के लिए जितने उत्सुक रहते हैं, मदर टेरेसा को देखने का आकर्षण भी उन्हें कम नहीं होता। वे मौलाली में मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़ के भवन में जाते हैं। माँ से मिलकर प्रायः सभी माँ के हाथों में कुछ-न-कुछ सहायता के रूप में रख देते हैं। फिर हर पैसे को यक्ष के धन की तरह जो सँजोये रखते हैं वे व्यवसायी भी, पहले जिस संस्था की सहायता

करना चाहते हैं वह है—मिशनरीज ऑफ़ चैरिटीज । कोई जादू-टोना नहीं है। रात-दिन जब कभी जायें तो देखेंगे कि नीले किनारे की साड़ी पहने सारी सिस्टरें रोगियों के सिरहाने बैठी, पंगुओं की परिचर्या में व्यस्त, भूखों को अन्नदान या किसी अनाथ को आश्रय देने में लगी रहती हैं। बातें कम, काम अधिक—इस उद्देश्य में विश्वास करने वाली सिस्टरों को जब राह में चलते देखता हूँ तो लगता है कि ये चल नहीं रही, दौड़ रही हैं। कोई सवाल करने पर उनका जवाब, जहाँ तक संभव हो, संक्षिप्त रहेगा।

बातों में और काम मे कोई अलगाव नहीं है। सिस्टरों या ब्रदर लोगों का कामकाज देखकर ही आसानी से समझ में आता है। युद्ध-क्षेत्र में सम्मुख-समर में मृत्यु की बाजी रख युद्धरत स्वदेश-प्रेमी सैनिकों से 'होम फ़ॉर डाइंग डेस्टिट्यूट' के सिस्टर और ब्रदर लोगों के काम की तुलना हो सकती है। सैनिकों की तरह इन सिस्टरों में भी साहस, धैर्य, आत्म-त्याग, देश और जनता के प्रति प्यार रखने वाला हृदय है। एक मनुष्य के हृदय और दूसरे मनुष्य के हृदय में आकर्षण संभव है। किन्तु हृदय-परिवर्तन ? हाँ, वह भी संभव है। दस्यु रत्नाकर को राम-नाम लेने का अधिकार प्राप्त हुआ था। 'मरा-मरा' कहते-कहते वह एक दिन राम नाम पर पहुँच गया। इसीलिए तो बाहर सड़क पर दुर्गंध-भरे, मुमूर्षु, किसी भिखारी को देखकर जो व्यक्ति नाक सिकोड़कर दूर हट गये हैं, ऐसे लोगों को भी 'निर्मल हृदय' में रोगियों की परिचर्या करते देखा गया है। पूछने पर जवाब मिला, "यहाँ आने के बाद अंदर का मनुष्य जाग उठता है।"

सिस्टरों के निकट एक दिन जानना चाहा था, "यहाँ ऐसे रोगी, दुर्गंधमय, गलित, मृतप्राय लोगों में रहकर सेवा करने में बुरा नहीं लगता ? बीच-बीच में परिवेश असहनीय नहीं लगता ?" सिस्टरों के चेहरे पर मुसकान खेल गयी। "न, कष्ट क्यों होगा ? मैं जब किसी रोगी की सेवा करती हूँ तो, वास्तव में, इस प्रकार हम भगवान की ही सेवा करते हैं। किसी मरते हुए भूखे को अपने हाथों से खिला देते हैं तो हमें लगता है कि यीशु को खिला रहे हैं। वह अनिर्वचनीय आनन्द होता है। हमें इस काम को करने में सचमुच खुशी होती है।"

बीच-बीच में रुकावट आती है। लेकिन उन सारी समस्याओं का समाधान ऐसे ढंग से हो जाता है कि सोचा नहीं जा सकता। और ये अमानवीय घटनाएँ इतनी होती हैं कि बहुत लोगों को यह सोचना पड़ जाता है कि माँ के साथ भगवान *का ही हाट लाइन[1] पर कोई संपर्क है। धन के अभाव से एक बार अनाथ* बच्चों के आश्रय-स्थान शिशु-भवन में बड़े दिन का उत्सव बंद होने वाला था। और जो जन्म से ही वंचित हैं उनके लिए इस उत्सव का एक विशेष महत्त्व है। जब सब लोग

1. सीधा संपर्क।

चिंतित थे उस समय आकर्षक वेश में एक युवती शिशु-भवन के प्रांगण में आयीं। कुछ पूछने के पहले ही युवती बोलीं, "बड़े दिन के उत्सव में शिशु-भवन का पूरा खर्चा उठाने का अधिकार मुझे दें।" शिशु-भवन का बड़े दिन का उत्सव बंद न हुआ। उसके विपरीत दूसरे बरसों की तुलना में और अच्छी तरह संपन्न हुआ।

एक दूसरी सिस्टर ने एक और घटना बतायी। धनाभाव दूसरे क्षेत्र में भी है। रुपयों के अभाव में एक बार शिशु-भवन में दूध खरीदना बंद हो गया। सभी इस सोच में पड़े थे। शाम के वक़्त दरवाज़े पर एक सज्जन से सिस्टरों से भेंट हुई। अचानक कहना नहीं, सुनना नहीं। सज्जन ने जेब से कुछ रुपये निकाले। सिस्टर की मुट्ठी में रुपये देकर सज्जन बोले, "यह मामूली-से रुपये बच्चों के लिए खर्च करके मुझे खुशी होगी। अपने को धन्य समझूंगा।" मुट्ठी खोलते ही सिस्टरों ने देखा सौ-सौ रुपये के दस नोट थे, एक-दो नहीं।

इस तरह की घटनाओं के और भी उदाहरण हैं। पदस्थ अफ़सरों की पत्नियां क्लब में न जाकर बड़े दिन के उत्सव में सम्मिलित होने के लिए यहां आती हैं। मां की ही ज़ुबानी सुना था कि मध्य-वर्ग परिवार का एक बच्चा जिसके मुंह से अच्छी तरह बात भी नहीं निकलती थी, वह भी दोनों हाथों में दो छोटी-छोटी शीशियों में भर कर चीनी ले आया। सिस्टर के हाथों में देकर बोला, "घर पर तीन दिन चीनी नहीं खायी है। वही चीनी अपने छोटे-छोटे भाई-बहनों को देने के लिए ले आया हूं।" इसकी कोई तुलना हो सकती है?

बाईस

मां में जो जादू है, जो किसी भी आदमी को प्रेरित कर सकता है, उसे एक भद्र महिला से सुना कि कलकत्ता विश्वविद्यालय के एम० ए० क्लास का एक छात्र मां से किस तरह मिला था। छात्र एक दिन कॉलेज से भागकर सियालदह अंचल में कई दोस्तों के साथ सिनेमा देखने के लिए निकला था। उसने देखा कि एक महिला उसे बुला रही हैं। भद्र महिला नीले किनारे की सफ़ेद साड़ी पहने थीं। देखने में संन्यासिनी-सी थीं। सामने ही ढेर किया हुआ कूड़ा था। कूड़े में अधमरी हालत में एक आदमी पड़ा हुआ था। उस आदमी को कूड़े के ढेर में से निकाल बाहर करने के लिए मां ने लड़के की सहायता चाही थी। अधमरी, बदबू भरी, कूड़े से ढकी देह को छूने की कल्पना भी लड़का न कर पा रहा था। लेकिन विश्व-विद्यालय के उस लड़के ने अकल्पनीय काम किया। विद्यार्थी के कहने के अनुसार, 'सियालदह में उस संन्यासिनी के मुंह की ओर देखकर मैं ऐसा आकृष्ट हुआ कि मैं

इसके आगे कुछ सोच ही न सका। प्रायः आविष्ट की भाँति मैंने देखा कि मैं संन्यासिनी की सहायता कर रहा हूँ। क्यों, किस कारण से मैं ऐम्बुलेंस में चढ़कर उनके साथ उन मुमूर्षुओं के आश्रय-स्थान गया, बैंडेज बाँधने में भी मैंने सहायता की। सारी बातें मुझे सपने-सी लगीं। किन्तु सबसे अधिक एक चीज जो मुझे सचमुच लगी वह यह कि जीवन में यह पहला उल्लेखनीय काम किया। इस सबके लिए ही मनुष्य ससार में जीवित रहना चाहता है।'

कर्मचचल कलकत्ता प्राणशक्ति से भरपूर है। चारों ओर ह्रास के बीच भी जीने का अधिकार यहाँ ज़ोरों से माँगा जाता है। इसी के बीच बाहरी लोग यहाँ के रुचिकर सास्कृतिक परिवेश में स्वतंत्रता-बोध करते हैं। कलकत्ता कलकत्ता ही है। फिर भी दुख नहीं मिटा। किन्तु जब देखते हैं कि निवेदिता इस दुख के शहर में ही चिर आनंद के स्वाद को खोज पाती हैं, या करुणामयी माँ मदर टेरेसा की तरह इस शहर को अपना प्रियतम कहकर संबोधित करती हैं तो स्वाभाविक कारण से ही मन खुशी से भर जाता है। काफी ऐश्वर्यशाली न होने पर भी, हृदय के ऐश्वर्य से ही तो इस महान महिला को कलकत्ता ने, कलकत्ता के लोगों ने, आकर्षित किया है। यह किस तरह कम है?

समाज में सचेतनता बहुत बढ़ गयी है। इस शहर में ऐसे बहुत-से हृदय वाले लोग हैं जो मुक्त होकर दान करते रहे हैं। वह दान केवल निःस्वार्थ ही नहीं करते, बिलकुल गोपनीय रखने के लिए भी अनुरोध करते हैं। दुखी अनाथों की सेवा में सभी स्तरों के व्यक्ति आगे आये हैं।

शिशु-भवन से विदेशों में ही नहीं, इस देश के भी बहुतेरे धनी-मानी परिवार की माताओं ने दत्तक पुत्र-कन्या लिये हैं। जाति, धर्म की सकीर्णताओं को छोड़कर मानवता के लिए भारतवासी मात्र ही इससे गर्व अनुभव करते हैं।

हिमालय के समान बड़ी इस समस्या का समाधान होने में और भी समय की आवश्यकता होगी। सूखा, बाढ़, दुर्भिक्ष इन समस्याओं को और भी तीव्र बना देते हैं। इनके अंदर चमकती दीपशिखा मिशनरीज ऑफ चैरिटीज है। बदन पर नीले किनारे की साड़ी, कंधे से धर्म-विश्वास का प्रतीक लगा हुआ—बाहरी आवरण के ये चिथड़े ही आज सेवा, धर्म और प्यार के प्रतीक हैं।

अभी भी सद्यजात शिशुओं के लिए धरती बहुत कठोर है। पैदा होने के क्षण से ही आर्त्त चीत्कार की ध्वनि से खुले आकाश के नीचे वायु भारी हो जाती है। ये शिशु किसी दिन अपनी जन्म देने वाली माँ को न खोज सकेंगे। ऐसे असख्य लोग हैं जो अस्थिर मानसिकता वाले, पगु या अपूर्ण अंग वाले शरीर लिये भी सिर पर कोई आच्छादन नहीं पाते, फुटपाथ के कठोर बिस्तर पर असहाय भूखे, रोगी, अस्वस्थ पड़े हैं जिनके ज्वर से तपते माथे पर स्नेह की हथेली फेरने के लिए इस

दुनिया में एक भी आदमी नहीं है। इनके लिए ही हैं माँ टेरेसा और उनके विश्वस्त अनुगामियों का दल।

तेईस

भारतवर्ष साधना के लिए तीर्थस्थान है। संसार की सारी सृष्टि में स्रष्टा के आनंद को खोजने का प्रयत्न हमारे देश की धरती पर ही संभव हुआ है। आत्मा से अभिन्न ऐक्य की खोज और ईश्वर-प्रेम में जीवों की सेवा—यह तो इसी धरती का गुण है। माँ संन्यासिनी के रूप में आयीं। मिशनरी स्कूल में अध्यापन किया। किन्तु यह शांत, उद्वेगरहित जीवन माँ को बाँधकर न रख सका। भारत के दीन-दरिद्र लोगों की असहाय अवस्था ने उनके मन में एक स्वतंत्र उपलब्धि और विश्वास जगा दिया। इसीलिए तो ईश्वर के प्रति गहरा विश्वास और ग़रीब-से-ग़रीब मानव के प्रति प्यार का खिचाव—इन्हीं दो चीज़ों की पूंजी लेकर उन्होंने सब-कुछ छोड़ दिया। क्रमशः उनकी अपनी बनायी संस्था मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़ बन गयी। स्वदेश और विदेश के नर-नारियों ने आकर योग दिया। इसे दुनिया के बहुत-से स्थानों से सहायता मिली। सीधे-सीधे मिशनरी के रूप में सम्मिलित हुए बिना जो बाहर से उसे चाहते थे, उन्होंने दुनिया के बड़े-बड़े शहरों में 'इंटर-नेशनल एसोसिएशन ऑफ़ कोवर्कर्स ऑफ़ मदर टेरेसा' बना लिया।

कलकत्ता की बस्तियों में दरिद्र और अनाथ शिशुओं के लिए प्राथमिक विद्यालय की स्थापना से जो कर्मयज्ञ आरंभ हुआ वह क्रम से फैलकर देश की सीमाओं को पार कर दूर-दराज़ में सबसे निचले और सबसे पिछड़े सर्वहारा लोगों में फैल गया।

बीच-बीच में घूम-फिरकर एक ही प्रश्न सबके मन में उठता है कि माँ टेरेसा के इतने बड़े काम का स्रोत कहाँ है? मात्र दो दशकों में उन्होंने जो संघशक्ति और संस्थाएँ स्थापित कर लीं, वह बहुतों को अलौकिक लगता है। इस प्रश्न का जवाब पाने के लिए माँ के पास जाना होगा। नीले पाड़ की सफ़ेद साड़ी पहने, सीधी-सादी चाल-ढाल, वक्ष के बायीं ओर उनके धार्मिक विश्वास का प्रतीक-चिह्न है—सब-कुछ साधारण ही तो है। इस साधारण में ही कहीं छिपा हुआ है असाधारणत्व। तभी तो माँ की शांत, करुणापूरित आँखें देखकर ही मन अजीब-सा हो जाता है। सहसा आँखों के आगे तैर उठती है उस महामानव की बात, जो काँटों का मुकुट पहने वधभूमि पर खड़े अपने हत्यारों के लिए भगवान के निकट क्षमा की भीख माँग रहे हैं, जिनकी वाणी भौगोलिक सीमा पार कर सारी पृथ्वी पर फैल गयी

है, जिस वाणी का सारांश अपने पडोसी को प्यार और पीड़ित मानवता की सेवा है।

माँ से कुछ देर बातें करने पर समझ मे आता है कि उनकी सारी साधना भगवान के पुत्र यीशु के प्रति निवेदन है। कट्टर धर्मांध लोगों को सपूर्ण रूप से विसर्जित होने पर भी धर्म-विश्वास मे रहकर हीं माँ के सारे कार्यों की प्रेरणा मिलती रहती है। ससार मे जो लोग दीनो से दीन हैं, ससार मे जिन्हे अवांछित समझकर उपेक्षा से त्याग दिया गया, केवल उनकी सेवा और कल्याण मे से ईश्वर की प्राप्ति संभव है—इस प्रबल विश्वास को लेकर ही वे काम कर रही हैं। अपने को सबके बीच खो दिया है। उनकी इस उपलब्धि मे कोई दुविधा नही है, और न कोई संशय है। इस अटल विश्वास को माँ सबमें संचारित करने में समर्थ हैं।

चौबीस

सत्यकाम नाम की ओट में यह युवक आज शिक्षित और प्रतिष्ठित हुआ है। किन्तु सत्यकाम के मुँह से ही उसके जीवन की अनपेक्षित घटना सुनिये।

"इस समय मेरी आयु छब्बीस बरस की है। दक्षिण कलकत्ता की एक रोलिंग मिल मे सवेरे और रात दोनो शिफ्टो मे सुपरवाइजर का काम करता हूँ। दिन मे सेंट जेवियर्स कॉलेज मे बी० एस-सी० मे पढता हूँ। अच्छी तरह से पास होने का भरोसा है। मुझे अच्छी तरह पास करना ही पडेगा। वैसा न होने से मैं अपने उस पालने वाले को जिसे मैं अपने पिता से बढकर पहचानता हूँ और श्रद्धा करता हूँ, मुँह न दिखा सकूँगा। बी० एस-सी० पास कर पाने पर वे मुझे विलायत भेजकर इजीनियरिंग पढ़ायेंगे। यह मेरे लिए अकल्पनीय है।"

सत्यकाम ने पिछले जीवन मे डुबकी लगायी। अपने जीवन के उन दिनो की बात कहते रहे जिन्हें सोचकर बदन सिहर उठता है। "बीस बरस पहले मैं इस दुनिया से विदा लेकर—बहुत दूर—दूर नक्षत्र पर चला जाता। और जिंदा रहने पर भी पगु भिखारी या मुहल्ले के गुडे, वैगन-ब्रेकर के रूप मे मुझे जाना जाता। वही स्वाभाविक था। लेकिन वह न हुआ, क्योकि जब मैं बहुत छोटा था तो नीले पाड़ की सफ़ेद साडी पहने कई देवियो (हाँ, मेरे लिए तो वे देवियाँ ही हैं) ने और भी बहुतों के साथ मेरा उद्धार किया। रहस्यमय लगता है? अच्छा, तो सुनिये मेरे जीवन की वह कहानी, जिससे एक टुकड़ा जली मिट्टी हीरा बन गयी। जीवन के शुरू के दस बरस एक बस्ती मे बीते थे, कूड़े-से परिवेश में। पडोसी भी वैसे ही थे। भूख की आग क्या होती है, तभी समझना सीखा था। माँ की याद धुंधली-

धुँधली-सी ही है। रूखी निर्मम निराशा में भी माँ का स्नेह समझ में आता था। पिता को कभी देखा ही नहीं था। भीख माँगकर, माँग-मूँगकर मेरी पंगु माँ को दिन-भर में जो मिलता, शाम को उसी की आशा में मुँह उठाये रहता। हम चार भाई-बहन थे। सभी बीमार रहते थे। दुबली-पतली हड्डियाँ, लकड़ियों-से हाथ-पैर, पीले उलझे चिपके बाल; ज्यादा बखान करने की ज़रूरत नहीं है। ऐसे लोगों को राह-बाट में हर जगह देख सकते हैं।

"सप्ताह में दो-तीन दिन कुछ नहीं मिलता था। कुछ न दे सकने पर माँ निष्ठुर हो जाती थीं। हमारा रोना रोकने के लिए डंडे से पीटतीं। मुझे अच्छी तरह याद है, लगभग डेढ़ दिन पेट में कुछ नहीं पड़ा था। थकी अवसन्न देह लिये बहुत-कुछ अभ्यासवश ही बस्ती के निकट सूने मैदान में आकर बैठा था। देखा क्या कि एक सफ़ेद गाड़ी को घेरकर बस्ती के लड़के-लड़कियों की भीड़ खड़ी थी। मैं पास गया। देखा, नीले किनारे की सफ़ेद साड़ी पहने कई महिलाएँ बच्चे-बच्चियों को दूध और डबलरोटी दे रही थीं। कहने की ज़रूरत नहीं कि मैं भीड़ में जा पहुँचा। मन में बड़ी उत्तेजना थी। दो रोटियाँ मिलने से एक तो खा सकूँगा। एक मुन्नी, खोका, सुकू को दे सकूँगा। अन्त में टीन का पाव-भर दूध, दो टुकड़े रोटी और एक गोली (बाद में पता चला कि विटामिन की) मेरे हाथ पड़े। भीड़ ठेलकर बाहर खिसक आया। बड़ी सावधानी से छाये नल के नीचे दूध का बर्तन और रोटी को रखा। चील झपट्टा न मारे, इसलिए एक डंडा भी लाया। दूध और रोटी सामने रहने पर भी मैं रो पड़ा। बिलकुल भूखे छः बरस के बच्चे का रोना सुनकर मानो आसमान से परी उतर आयी। दोनों हाथ बढ़ाकर मुझे छाती से लगाकर पूछा, 'रो क्यों रहे हो? और दूध दूँ?'

"मैंने किसी तरह बिसूरते-बिसूरते जवाब दिया, 'मुन्नी, सुकू, खोका तो भूखे हैं।'

"वह देवी चिंतित होकर बोलीं, 'वे कहाँ हैं? मैं तुम्हारे दूध की रखवाली कर रही हूँ। तुम भागकर उन्हें बुला लाओ।'

"वहीं मुझे पहली बार देवी के दर्शन हुए। इन्हीं देवियों ने मुझे अंधकार से उठाकर आलोकित समाज में प्रतिष्ठित किया। आजकल दोपहर को मैं छः नंबर बस से उतरकर जल्दी-जल्दी पार्क स्ट्रीट होकर सेंट ज़ेवियर्स कॉलेज की ओर पैदल जाता हूँ। शहर के इस भाग के प्रकाश की उज्ज्वलता हमें उस अँधेरी बस्ती के जीवन की दलदल से नहीं निकाल सकती जिसे मैं बहुत पहले पीछे छोड़ आया हूँ। अब भी ज़रा-सी सहानुभूति के अभाव में, सहृदयता के अभाव में हज़ारों निष्पाप जीवन बहुत अधिक पीड़ा पाते हैं।"

इस दुख, निराशा, अंधकार भरी दुनिया में माँ एक पारसमणि लेकर आगे बढ़ी हैं। जिसके हृदय में उस पारस पत्थर का स्पर्श होगा वही जीवन सार्थक होगा।

इस प्रकार छः वरस का बालक नीले किनारे की सफ़ेद साड़ी पहने परी का अंध-भक्त हो गया। "वह रोज़ आकर दूध देतीं, किसी की हारी-बीमारी में दवा देतीं। इसके सिवा सिखा देतीं कि किस तरह से बस्ती को साफ़-सुथरा रखना होगा। उसके बाद एक दिन सुना कि बस्ती में स्कूल खुलेगा। वे ही खोलेंगी।

"खासे बड़े स्कूल में अच्छे-अच्छे बच्चे-बच्चियाँ आते-जाते थे। देख-देखकर स्कूल में पढ़ने की बड़ी तबीयत होती। सोचा कि इतने दिनों बाद शायद वह इच्छा पूरी हो। लेकिन यह स्कूल वैसा स्कूल नहीं था। ऊपर टीन का छाजन, बाँस का बाड़ा और कुल दो कमरे थे। देवी से सीधे-सीधे कह दिया कि यह 'सड़ा स्कूल' है। उस दिन हँसकर सिस्टर बोलीं, 'पहले यहाँ पढ़ाई-लिखाई खत्म करो, बाद में तुमको ज़रूर बड़े स्कूल भेज दूँगी।' जैसे किसी ने मन को हिलाया हो। आँखों के आगे मानो सुंदर संसार तैर उठा। लगा कि आगे बढ़ने का एक यही मार्ग खुला हुआ है। बस्ती के उसी स्कूल में लिखना-पढ़ना शुरू हुआ। तीन बरस बाद जब मैं प्रतिमा सेन स्कूल में भरती हुआ, उन दिनों तक हमारी बस्ती के 70-80 लड़के-लड़कियाँ प्राइमरी की पढ़ाई के क्षेत्र में आ गये थे। इन लड़के-लड़कियों में बहुतों के माँ-बाप को अक्षर-ज्ञान भी नहीं था। मामूली स्कूलों में पढ़ने-लिखने की जिनकी उम्र बीत चुकी थी, प्रतिमा सेन स्कूल मुख्यतः उनके ही लिए है। हमारे साथ सुखेनदा पढ़ते थे। हरिनाभि से साग-सब्ज़ी लेकर शहर आते, खरीद-फ़रोख़्त के बीच सुखेनदा ने पढ़ने-लिखने का मौक़ा भी निकाल लिया। मनोहर जूते पालिश करता था, मदन चाय की दूकान पर काम करता। दूसरी जगह सुविधा न होने के कारण सब इसी स्कूल में आये थे। मुकुटा का दिमाग़ अच्छा नहीं था। उसने यहीं हाथ का काम सिखाने के विभाग में बढ़ईगीरी सीखी थी। मुन्नी ने लिखने-पढ़ने के साथ-साथ यहाँ सिलाई सीखी। थोड़ी-बहुत सिलाई कर छोटा-मोटा रोज़गार भी किया था। बाद में यहीं से मुन्नी ने शॉर्टहैंड और टाइप सीख लिया। अब वह डलहौज़ी में एक छोटे-से कमरे में बैठकर रेमिंग्टन मशीन पर आँधी की तरह काम करती है।"

बैठक के पास ही प्रतिमा सेन स्कूल है। जो लड़के-लड़कियाँ माँ-बाप के लिए समस्या बन गये हैं उनके लिए ही है यह स्कूल। घर में जिनके लिए कोई स्थान नहीं, उन्हें ही यहाँ स्थान मिलता है। एक लड़का किसी भलेमानुस के यहाँ चोरी करते हुए पकड़ा गया। एक दिन पुलिस कमिश्नर खुद ही लड़के को स्कूल में भरती करने के लिए ले आये। एक लड़के का पेशा जेब काटना था। इसके लिए उसे जेबकतरों की विद्या में पारंगत होने के लिए विशेष स्कूल में ट्रेनिंग लेनी पड़ी थी। यह लड़का कई बार जेबकतरी में पकड़ा गया। जनता के हाथों पिटाई के बाद उसने यह लाइन छोड़ दी। 1968 में लड़का प्रतिमा सेन स्कूल में आया। अब

लड़के ने किशोरावस्था पार कर यौवन में पैर रखा है। वह पूरे तौर पर आदमी हो गया है।

पच्चीस

सत्यकाम अपने जीवन की कहानी कहते रहे: "एक बड़ी उम्र की महिला कई दिनों तक 54-ए, आचार्य जगदीश वसु रोड पर सिस्टरों के पास अपने लड़के के लिए संबंध की तलाश में आती रहीं। लड़का मेडिकल रिप्रेजेंटेटिव था। सात सौ रुपये महीना पाता था। महिला को मुन्नी अच्छी लगी। मुन्नी की शादी हो गयी। अब वह मौलाली में मेडिकल रिप्रेजेंटेटिव पति के फ्लैट में रहती है। मुन्नी की तरह अन्य बच्चियों के भी बड़े होने पर सिस्टरें शादी का प्रबंध कर देती हैं।

"छोटी उम्र में ही माँ को खो दिया। माँ के जाने के बाद शिशु-भवन में मुझे स्थान मिला। सिस्टरों ने मेरी माँ के शून्य स्थान को पूरा किया। यहीं मुझे जीवन का माधुर्य मिला। उसके पहले जब मैं देखता था कि मेरी ही उम्र के लड़के-लड़कियाँ सज-धजकर अपने माँ-बाप के हाथ पकड़ तरह-तरह के कपड़े-लत्ते पहनकर घूमते हैं तो शुरू में मेरे मन में एक ईर्ष्या का भाव ही आता। उसके बाद आँखों में आँसू आ जाते। लेकिन यह मनोभाव अधिक दिनों तक रहने के पहले ही शिशु-भवन में जीवन का एक और अर्थ मिल गया।

"एक दिन भवानीपुर अंचल के एक डॉक्टर अपनी पत्नी के साथ लड़के-लड़कियों को देखने शिशु-भवन में आये। इन सहृदय डॉक्टर विकास चौधरी ने मेरे जीवन का दायित्व ग्रहण किया। सिस्टरों से सुना कि डॉक्टर राय चौधरी हर महीने मेरी पढ़ाई-लिखाई के लिए तीस रुपये दिया करेंगे। और भी दूसरे खर्चों के देने में उन्होंने जरा भी कंजूसी नहीं की। केवल यही नहीं, वे बीच-बीच में आकर मुझे देख जाते थे। अपना समझकर मुझे गोदी में उठा लेते। मेरी पढ़ाई-लिखाई, स्वास्थ्य के बारे में भी खोज-खबर लेना वे न भूलते। और तो और, अगर कुछ दिनों के लिए कहीं जाते, तो मुझे चिट्ठी लिखते। दुनिया में मेरे नाम से वही पहली चिट्ठी थी। चिट्ठी मिलने पर इतनी खुशी हुई कि बताया नहीं जा सकता। यही डॉक्टर भले आदमी ही अब मेरे लिए पिता-तुल्य हैं। मैं डॉक्टर साहब की पत्नी को माँ कहकर पुकारता हूँ। उन दोनों के साथ मेरा गहरा संबंध है। उनको पाकर बचपन में ही मुझे लगा कि इस विशाल संसार में मैं अकेला और बेजान-पहचान का नहीं हूँ, मेरे भी अपने हैं, जो मुझे प्यार करते हैं, मेरे लिए चिंता करते हैं। शिशु-भवन के बहुत-से रहने वालों को मेरी ही तरह माँ-बाप मिल जाते

हैं—जो अपरिचित प्यार-दुलार देकर नवजात शिशु को अभिशाप से बचाये रखते हैं।

"हमारी बस्ती के एक और आदमी की कहानी है जिसे सुनकर सचमुच लगेगा कि जिनका कोई नहीं है, उनकी ये सब सेविकाएँ हैं। निवारण काका हमारी बस्ती में रहते थे। भीख माँगकर किसी तरह काम चलता था। हर दिन सवेरे हाथ-पाँव में नक़ली घाव बनाकर कोढ़ी बन कालीघाट मंदिर के पास भीख माँगते। फटा कंबल लपेटे, सूजा हुआ चेहरा, एक ओर दाढ़ी-मूँछ—इस शक्ल में निवारण काका बीभत्स लगते। लेकिन यह नकली कब असली हो गया, इसका पता नहीं लगा। पर एक दिन सुना कि निवारण काका को सचमुच कोढ़ हो गया है। कालीघाट पर भीख माँगते समय ही निवारण काका को कालीमन्दिर के पीछे 'निर्मल हृदय' का पता चला था। यहाँ केवल लाचार मरते हुओं को ही आश्रय मिलता हो, यही नहीं, कुष्ठ रोगियों को भी यहाँ से दवा-दारू दी जाती थी। खाने-पीने का भी प्रबंध है। निवारण काका की चिकित्सा शुरू हुई। बीच-बीच में 'मोबाइल लिप्रसी क्लिनिक' बस्ती में आता रहता। कुछ दिनों बाद मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़ के ब्रदर लोगों ने उन्हें टीटागढ़ के कुष्ठ आश्रम में भर्ती करा दिया। महीने-भर के बाद निवारण काका को देखकर ताज्जुब हुआ; निवारण काका बड़ी जल्दी चंगे हो गये। मुझे पुकारकर बोले, 'ठीक कर लिया, अब भीख नहीं माँगूँगा, कुछ और करूँगा।' मैंने पूछा, 'क्या करोगे? कोई काम भी तो नहीं आता।' निवारण काका हँसकर बोले, 'सीख लूँगा। दवा देना, बैंडेज बाँधना—सब सीखकर यहीं रह जाऊँगा। सब अच्छा लगता है। यहाँ का सब-कुछ अपना-अपना-सा लगता है।' लौटते वक़्त एक जोड़ा जूते मिले, वे निवारण काका के बनाये हुए थे।

"एक बरस और बाद की बात है। आसनसोल से चौबीस किलोमीटर दूर शांतिनगर है। वहाँ की डिस्पेंसरी में निवारण काका काम करते हैं। बहुत खुश हैं। इन कुछ महीनों में ही निवारण काका-से निरक्षर भिक्षाजीवी, मिथ्याभाषी, रूखे आदमी ने देखा कि आदमी आदमी को कितना प्यार कर सकता है, कितनी सेवा कर सकता है, कितने सहज रूप से कलेजे के पास खींच सकता है!

"निवारण काका अकेले नहीं हैं। हर महीने निवारण काका की तरह हज़ारों कुष्ठ रोगियों की सिस्टर और ब्रदरों के तत्वावधान में चिकित्सा की जाती है। अख़बारों में हर दिन विनाश की ख़बरें पढ़ते रहते हैं। लेकिन पृथ्वी कब, किस ओर से धनी हो रही है, उसकी ख़बर कौन रखता है?

"समाप्त करने के पहले अपने जीवन के सबसे बड़े पाप की बात बतानी ज़रूरी है। इसे मेरा 'कन्फेशन' कह सकते हैं। स्वीकार कर लेने पर पाप नष्ट हो जाता है, इसी से निष्कपट सब बताये जा रहा हूँ। उस समय मेरी उम्र बीस-इक्कीस होगी। तभी कॉलेज में भर्ती हुआ था। कॉलेज में भर्ती होने से पहले ही एक

नौकरी मिल गयी थी। इसीलिए रुपये-पैसे की खींचतान न थी। सेंट ज़ेवियर्स में मेरे सहपाठियों की गाड़ियां थीं, रोज़-रोज़ नयी-नयी पोशाकों की तड़क-भड़क—सब मेरी नज़रों में जाने कैसा लगता ! वड़े दिन की पूर्व-संध्या को पार्क स्ट्रीट की फ़ैशनेवल दूकान से एक सौ वीस रुपये मीटर का 'इम्पोर्टेड स्ट्रेचलॉन पीस' ख़रीद लिया। रोशनी से झलमलाती उस जगह और भी कुछ देर विताकर कपड़े का पैकेट हाथ में लिये चौरंगी और पार्क स्ट्रीट के मोड़ पर जव पहुँचा तो रात के दस वज रहे थे। सड़क प्रायः सूनी थी। जैसे सव कुहरे में छाया हुआ था। जाड़े की रात मानो और भी अँधेरी लग रही थी। नज़दीक ही गिरजे की घड़ी में टन-टन कर दस वजे। सहसा सामने नज़र जाने पर देखा कि मैं मरकरी लैम्प की धुंधली रूपहली रोशनी में गांधीजी की मूर्ति के विलकुल आगे खड़ा हूँ। पंद्रह वरस पहले का 'मैं' जैसे मेरे भीतर जाग उठा। मूर्ति के आगे एक पांच वरस का नंगा वच्चा तेज ठंडक से कांप रहा था। मुझे मानो किसी ने सड़ाक से चावुक मारा हो। लगा कि दुनिया में मुझसे वड़ा अपराधी दूसरा नहीं है। ज़रा भी देर न कर पैकेट को खोल डाला। स्ट्रेचलॉन के कपड़े को उसकी छाती पर लपेट दिया।

"मां प्राय कहा करतीं कि वे जव किसी रोगी, कातर, असहाय को कलेजे के पास लगा लेती हैं, उसकी सेवा करती हैं, तो सवको यीशु मानकर ही उनकी सेवा करती हैं। मां वहुत ही महान हैं। यह विश्वास उनके लिए ही संभव है। किन्तु मैं जव किसी असहाय शिशु को गोद में उठाता हूँ, रोगी वालक को छाती से लगा लेता हूँ तो मुझे लगता है कि मैं अपने को ही आश्रय दे रहा हूँ, अपने को ही कलेजे से लगा रहा हूँ।"

सत्यकाम की कहानी का यहीं अंत होता है। सत्यकाम अकेला नहीं है। मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़ की दया से आज जीवन में और भी कितने ही सत्यकाम प्रतिष्ठित हुए हैं। कुछ अध्यापक वन गये हैं, और कोई-कोई मिशनरी संस्था के पादरी वनने के सौभाग्य से सौभाग्यशाली हुआ है। विवाह के वाद यह सिस्टरों के पास पत्नी को लाते हैं। संतान होने के वाद फिर मुलाक़ात करने आते हैं। सिस्टरें भी इन्हें मां की तरह दुलार करती हैं, आशीर्वाद देती हैं।

छब्बीस

मां के जीवन की टुकड़े-टुकड़े कहानी मन को हिला देती है। वे उस समय लोरेटो में अध्यापिका थीं। सहसा कोई अध्यापिका कलकत्ता से वाहर चली गयीं। उसी अध्यापिका के पहने हुए कपड़े-लत्तों को मां ने पहनना शुरू कर दिया। वीच-वीच

मे कपड़े फट जाने पर अपने ही हाथो सिलाई कर लेती । और तो और, मोज़े भी क्रूस के कांटे से सिलाई कर बहुत दिनों तक चलाती । जब उनके जीवन मे किसी चीज़ की कमी न थी उस समय भी बाहरी आवरण बहुत सामान्य था ।

बचपन मे पिता को खोने के बाद अपनी माँ के पास ही माँ टेरेसा पली । माँ के निर्धनप्रायः जीवन ने उन्हें, उनके जीवन को प्रभावित किया । माँ टेरेसा अपनी माँ के संबंध मे कुछ बताना नही चाहती । लोरेटो स्कूल मे अध्यापन के समय या और कही काम मे नियुक्त रहने के समय किसी असावधान क्षण में बचपन की दो-एक घटनाओ की बात मुँह से निकल पड़ी है ।

यूगोस्लाविया के स्कपजे शहर मे माँ एक छात्रा थी । एक दिन स्कूल की छुट्टी के बाद खेल-कूद से फ़ुरसत पाकर घर लौट रही थी । उस समय घर पर छोटा भाई और एक बहन थे । सध्या होने के साथ ही तीनो भाई-बहन पढ़ने के कमरे मे गये । पढने की पुस्तक आगे खोलकर माँ अपनी एक अध्यापिका के व्यक्तिगत जीवन की समालोचना कर रही थी । छोटा भाई और बहन मन लगाकर वह कहानी सुन रहे थे । लेकिन अचानक कमरे में बत्ती न रहने से कहानी मे बाधा पडी । पड़ोस के कमरे मे बत्ती जल रही थी । इस कमरे में रोशनी नही थी । इसी पर उन्होने आपस मे कहा-सुनी शुरू कर दी । एक ने कहा, शायद स्विच बिगड़ गया है, इसीलिए यह हुआ है । दूसरे ने कहा, मेन स्विच बक्स में खराबी होने से यह खराबी हो सकती है । ठीक सबब किसी को नही मालूम था । सबके संदेह को छात्रा टेरेसा (तब तक माँ टेरेसा नही बनी थी) की माँ ने दूर किया । बेटे-बेटियो के बीच आकर बोली, "देखो, रोशनी मैंने बुझा दी थी । इसलिए स्विच को बेकार दोष देने से फ़ायदा नही है ।"

छात्रा टेरेसा ने सीधे-सीधे माँ से पूछा कि उन्होने रोशनी क्यो बद कर दी ?

माँ ने उनके जवाब मे कहा, "दूसरो के व्यक्तिगत जीवन की समालोचना के लिए रोशनी जलाने के लिए मेरे पास पैसे नही हैं। इसीलिए मैने रोशनी बद कर दी थी ।"

घटना बहुत ही मामूली थी, लेकिन उस दिन की वह घटना माँ को अब भी याद है । इसी तरह माँ टेरेसा ने अपनी माँ से शिक्षा प्राप्त की थी ।

छात्रा टेरेसा की माँ भी धर्मपरायण महिला थी । बड़ी-बडी बातें नही, अपने ही जीवन से वे घर के और लोगों को प्रेरित करती रहती । एक दिन माँ (छात्रा टेरेसा की माता) बाज़ार से कुछ सेब खरीदकर लायी । इन सेबों मे एक सेब मामूली-सा ख़राब था । माँ ने टेरेसा को बुलाकर कहा, "सेबों को एक टोकरी मे रख दो ।" माँ के कहने के अनुसार टेरेसा ने सेबो की टोकरी कमरे के कोने मे रख दी । कुछ दिन बाद माँ ने उनसे टोकरी लाने को कहा । टोकरी से ढक्कन हटाते ही देखा कि बहुत-से सेब सड़ गये थे ।

ऑफ़ चैरिटीज़ का मकान भी इससे बचा नहीं रहा। इतनी रात में मकान को हिलते देखकर सिस्टरों में से कुछ डर गयीं। बहुतेरी मां के पास भागी-भागी गयीं। मां ने इशारे से किसी को भी कमरे से बाहर जाने को मना किया। हाथ में माला ले, हाथ जोड़कर मां यीशु के चित्र के आगे खड़ी रहीं। आँखें बंद किये रहीं। भूकंप रुक जाने के बाद मां बोलीं, "भाग-दौड़ करने से क्या फ़ायदा था ? यीशु अगर हमें संसार से लेना चाहते हैं तो भागकर क्या बच सकेंगे ?"

मां से यह क़िस्सा सुनने के बाद सिस्टरों का आत्मविश्वास और भी पक्का हो गया।

रोज़ाना के जीवन में इस तरह की और भी घटनाएँ हैं। एक बार सेंट जोज़ेफ़ के जन्मदिन के उपलक्ष्य में एक फ़ादर मां के पास कुछ सहायता की आशा से आये। मां ने अपना छोटा-सा टीन का बक्स खोला। खोलकर देखा कि बक्स में सिर्फ़ एक रुपये का एक नोट है। वही नोट उनका आखिरी सहारा था। नोट को फ़ादर के हाथों पर रख दिया। मामूली-सा एक रुपया देते हुए मां को बहुत बुरा लग रहा था। मां की मेज़ पर सेंट जोज़ेफ़ की एक छोटी-सी मूर्ति थी। एक सिस्टर को बुलाकर मूर्ति को रुपयों से ख़ाली बक्स में रखने को कहा।

सिस्टर ने डरते-डरते मां से पूछा, "मां, आज सेंट जोज़ेफ़ का जन्मदिन है। मूर्ति को बक्स में रख देना क्या ठीक होगा ?"

मां के चेहरे पर मुसकान फैल गयी, "ठीक कहा। बक्स में रुपये आने पर फिर सेंट जोज़ेफ़ को निकालकर ठीक जगह पर रख देना।"

दूसरे दिन सवेरे मां कमरे से निकली ही थीं कि एक सिस्टर ने उनके हाथ में एक सादा लिफ़ाफ़ा लाकर रखा। लिफ़ाफ़ा खोलते ही सौ रुपये का एक नोट निकल पड़ा। नोट को हाथ में लेकर बोलीं, "देखा, मैं कैसा जादू जानती हूँ ! कल फ़ादर को एक रुपया दिया था। और वही एक रुपया सौ गुना होकर लौट आया। तो, सेंट जोज़ेफ़ के बक्स में बंद रहने की ज़रूरत ख़त्म हुई।"

काम के बीच में समय मिलने पर सिस्टरों के साथ वन भोजन के लिए जाना मां का पिछले जीवन का शौक़ था। बीच-बीच में धार्मिक सिनेमा भी झुंड बनाकर देखने जाना मां को अच्छा लगता। कलकत्ता में 'टेन कमांडमेंट्स' आने पर वे सिस्टरों के लिए बिना पैसे के टिकट जुटातीं। अभी इस बरस ही मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़ के पच्चीस बरस की पूर्ति के उपलक्ष्य में मां ने सिस्टरों और ब्रदरों को 'बेन हर' फ़िल्म दिखाने की कोशिश की। लेकिन अनेक कारणों से वह संभव नहीं हुआ। किताबों में भी धार्मिक पुस्तकें ही उन्हें सबसे अधिक प्रिय हैं।

अपने सुख-सुविधा की कोई बात नहीं सोचतीं। आचार्य जगदीश बसु रोड पर 'मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़ भवन' के सामने किसी भी दिन नौ बजे के बाद जाने पर सिस्टरें गंदगी साफ़ करती हुई देखने को मिलेंगी। बड़ी-बड़ी टीनें पकड़े

सड़क पर ले जाती हैं। वे कार्पोरेशन के कूड़ा फेंकने की जगह कूड़ा फेंककर लौट आती हैं। यह रोज का काम है।

सिस्टरों की ही तरह माँ के लेटने के लिए भी एक छोटी-सी चौकी है। और बहुतों की तरह एक पतला-सा गद्दा है। उस पर एक चादर है। माँ के कमरे में बिजली का पंखा नहीं है। केवल माँ के कमरे में ही क्यों, सिस्टरों में भी किसी के कमरे में पंखा नहीं है। लेकिन शिशु-भवन में, निर्मल हृदय में या निर्मला केनेडी आश्रम में जहाँ छोटे-छोटे लड़के-लड़कियाँ रहते हैं वहाँ पंखे हैं। अपने को गरमी से बचाने के लिए पंखे की हवा खायें और ग़रीब लोगों से जाकर कहें : मेहनत करो, काम किये चलो—यह नहीं हो सकता। माँ की बात भी वही है। अपने जीवन में जो करना संभव नहीं वह औरों को करने का उपदेश देने का कोई अधिकार नहीं है। हमेशा ही ग़रीब को चीज़ें देना पड़े, ऐसा नहीं है।

माँ का कहना है : "हम जो देते हैं उसे ही वे माँगते हैं। और भी अधिक पाना चाहते हैं। इन पच्चीस वरसों में इंसान के साथ मिलकर हमें धीरे-धीरे यह स्पष्ट हो गया है कि हमें कोई नहीं चाहता—यही भावना सबसे बड़ा रोग है। जीवन में मनुष्य के लिए इससे बड़ा अभिशाप और कुछ नहीं हो सकता। कुष्ठ रोग दूर करने की दवा निकल आयी है। टी० बी० भी ठीक हो जाती है, लेकिन 'मैं अवांछित हूँ, मुझे कोई नहीं चाहता' की-सी भयानक और कोई बीमारी मुझे तो मालूम नहीं है। इसे दूर करने की एक मात्र दवा प्यार का प्रलेप ही है।"

अट्ठाईस

एक प्रसिद्ध उपन्यासकार की वह कहानी याद आ रही है। जहाज़ से जाते हुए कुछ संन्यासी एक द्वीप में उतर गये। वहाँ एक संन्यासी का पैर फिसल गया। आख़िर में सागर के पार उसका शरीर बिगड़ी हालत में मिला। विभिन्न कारणों से संन्यासी-जीवन की कठोरता झेलकर सब लोग हमेशा नहीं चल सकते।

यह बात मानने की नहीं है कि दुनिया में विभिन्न प्रदेशों में संन्यासी या संन्यासिनियों में किसी-किसी का जीवन सुविधाजनक न हो। संन्यासी-संन्यासिनी बनने की प्रवृत्ति भी कम ही होती है। होठों पर लिपस्टिक या बड़ी-बड़ी पार्टियों में जाने की सुविधा और अवसर देने पर भी संन्यासी-संन्यासिनियों की संख्या वैसी बढ़ नहीं रही है। किंतु माँ टेरेसा के 'मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़' में इतनी कड़ाई रहने पर भी हर दिन संन्यासिनियों की संख्या बढ़ रही है।

बारह सिस्टरों की जगह आज एक हजार एक सौ इकसठ सिस्टर काम कर

रही हैं। इनमे बहुत बड़ी संख्या मे ब्रदर भी हैं। केवल पच्चीस बरसों मे इतनी अधिक संख्या में सिस्टर मिशनरीज़ ऑफ चैरिटीज के प्रति किस प्रकार आकर्षित हुई, यह सचमुच विचारणीय है। ये सब कठोर जीवन की अभ्यस्त हैं। छोटे-बड़े, जूनियन-सीनियर का झगड़ा नहीं है। यहां सब बराबर हैं। इसी से जिस तरह मां के कमरे मे पखा नही है, उसी तरह कमरा पोंछना, साफ करना, थाली-बर्तन धोना सबके लिए ज़रूरी है। काम की जिम्मेदारी लेने के बारे में छोटे-बड़े, जूनियर-सीनियर का विचार किया जाता है—अवसर और सुविधा के बारे में नहीं।

ज़िम्मेदारी के मामले में सब एक बंधन मे बँधी हैं। हज़ार से अधिक सिस्टरों में सौ मे से पचास ने यौवनावस्था पार नहीं की है। इसीलिए उनके शरीर और मन को पवित्र रखने का दायित्व सीनियरों पर है। प्रार्थना ही इन सब युवतियों को अंतर्मुखी बना देती है।

मां टेरेसा तो हैं ही। मिशनरीज़ ऑफ चैरिटीज़ की विभिन्न संस्थाओं के कामकाज चलाने की सर्वोपरि ज़िम्मेदारी पांच सिस्टरों की बनी एक 'काउंसिल ऑफ एडवाइज़र्स' पर है। सबके ऊपर मां खुद हैं। वे ही मदर-जनरल हैं। इसके बाद इस बरस जो पांच 'काउंसिल ऑफ एडवाइज़र' में चुनी गयी हैं वे हैं सिस्टर अग्नेस (असिस्टेंट मदर-जनरल), सिस्टर डोरोथी, सिस्टर फ्रेडरिक, सिस्टर जोज़ेफ माइकेल और सिस्टर कैमेलूस। ये सभी निर्वाचित हैं।

मां जब भारत के बाहर रहती हैं तो असिस्टेंट मदर-जनरल सिस्टर अग्नेस को ही सब-कुछ देखभाल करनी पड़ती है। मां सारी ज़िम्मेदारी उन पर छोड़ जाती हैं। सिस्टर अग्नेस, जिनका पहले का नाम सुभाषिणी दास था, मां के काम पर पहले आती हैं। वे लोरेटो मे मां की विद्यार्थी थी। आत्म-प्रचार-विमुख नन्ही-सी यह बंगाली महिला बहुत अच्छी अंग्रेज़ी बोलती हैं। बंगला के माध्यम से लोरेटो में पढ़ाई-लिखाई की थी। मां टेरेसा ही लोरेटो में 'बँगला माध्यम' शाखा की प्रधान थीं। यह ज़िम्मेदारी लेने के पहले मां ने खुद भी बँगला सीख ली थी। अब ज़रूर अंग्रेज़ी मे ही ज्यादा बातचीत होती है। बस्तियो मे जाने पर सिस्टर अग्नेस शुद्ध बँगला में ही बातें करती हैं। बस्तियो के रहने वाले भी सिस्टर को अपनी बहन की तरह ही मानते हैं।

मां टेरेसा के ससार के जीवन का 'अग्नेस' नाम बगाली महिला सुभाषिणी दास ने लिया।

इसके बाद है अंतर्राष्ट्रीय सस्था—इटरनेशनल एसोसिएशन ऑफ कोवर्कर्स ऑफ मदर टेरेसा। इस एसोसिएशन की अतिम रिपोर्ट मे अतर्राष्ट्रीय चेयरमैन के रूप मे स्थान पाया कोबहाम, सरे (इग्लैंड) 2, सिल्वरम की रहने वाली श्रीमती ऐन ब्लेकर के नाम ने। एसोसिएशन की वाइस-चेयरमैन के रूप मे आस्ट्रेलिया,

आस्ट्रिया, वेल्जियम, कनाडा, डेनमार्क, फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैंड, भारतवर्ष, आयरलैंड, न्यूज़ीलैंड, सिंगापुर, स्वीडन, स्विट्ज़रलैंड, अमरीका और वेनेज़ुएला के निवासियों के नाम हैं।

भारत से निर्वाचित वाइस-चेयरमैन इस शहर कलकत्ता की ही निवासी हैं। उनका नाम है श्रीमती पेरिन आयवेड़ा। पता है—10, वालीगंज, पार्क रोड, कलकत्ता-19।

उन्तीस

बस्तियों से घिरे तिलजला का 'प्रेमदान केंद्र' भी देखने योग्य है। आज से तीन बरस पहले 1973 ई० के 5 अप्रैल को पश्चिमी बंगाल के राज्यपाल ए० एल० डायस ने इस केंद्र का उद्घाटन किया। इसमें पाँच एकड़ जमीन है। बीच में एक सुंदर मकान है। मकान आई० सी० आई० की टेक्निकल सर्विस लैबोरेटरी की बिल्डिंग था। माँ के कहने से अब वह 'लैबोरेटरी ऑफ़ गॉड' में रूपांतरित हो गयी है। यह कलकत्ता के पूर्वांचल तिलजला के पैंतीस हज़ार लोगों की सेवा के लिए बना है।

मैदान के एक कोने में एक प्राथमिक स्कूल खोला गया है। बड़े मकान का एक हिस्सा अपुष्ट लड़के-लड़कियों के रहने की जगह है। इन लड़के-लड़कियों में बहुतों को सिस्टर दूर-दूर के गाँवों से यहाँ लायी हैं। सिस्टर केवल बस्तियों में ही नहीं, गाँवों में ग़रीबों की झोपड़ियों में भी पहुँचती हैं। अच्छा हो जाने के बाद लड़के-लड़कियों को उनके गाँव ले जाती हैं। उन्हें उनके माँ-बाप के हाथों में थमा देती हैं।

जड़बुद्धि वाले बच्चों के लिए और मुमूर्षु लोगों के लिए भी यहाँ ठहरने का प्रबंध है।

तिलजला का प्रेमदान, कालीघाट का निर्मल हृदय, दमदम हवाई अड्डे के पास निर्मला केनेडी केंद्र—हावड़ा, कुमार खालि, बानन्त (मड़ियापली), आसनसोल, शांतिनगर, दार्जिलिंग, सिलीगुड़ी, कलिम्पोंग, नागदा, न्यू जलपाईगुड़ी—बंगला देश के तमाम प्रांतों में मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़ की सेवा-संस्थाओं के समूह फैले हुए हैं।

सड़क पर चलते-चलते फुटपाथ के किनारे माँ ने डाभ[1] के हज़ारों खोल प्रायः

1. कच्चा नारियल

पड़े देखे हैं। एक दिन उन्होंने खुद कई खोल बटोरे। उन्हें सुखाया। डाभ के इन सूखे खोलों से वे तरह-तरह की चीजें बनाने लगी।

हम डाभ का पानी पीकर खोल को सड़क पर फेंक देते हैं। इस तरह बहुत-सा कूड़ा जमा कर देते हैं। और माँ ने उसी कूड़े को काम में ले लिया। सियालदह के पास प्रेमदान में जाने पर दिखायी देगा कि तमाम अनाथ नारियल के इन छोवडों से तरह-तरह की चीजें बनाकर जीविका-निर्वाह कर रहे हैं।

तीस

तमाम लोगों के तमाम प्रश्नों के जवाब में : माँ

प्रश्न : माँ, आपके मन में इन भावनाओं का उदय कब हुआ; और कब आपमें यह चेतना आयी कि आप दरिद्रनारायण की सेवा में अपने को समर्पित करें?

माँ टेरेसा : बहुत दिन पहले जब मैं अपने माँ-बाप, आत्मीय स्वजनों के बीच घर में थी।

प्रश्न : वह जगह कहाँ है?

माँ टेरेसा : यूगोस्लाविया के स्कपजे शहर में। उस समय मेरी उम्र कुल बारह बरस की थी। मैं घर पर थी। छुटपन में हम लड़के-लड़कियाँ एक गैर-कैथॅलिक स्कूल में पढ़ते थे। हमारे स्कूल में अच्छे 'प्रीस्ट' थे। यह 'प्रीस्ट' भगवान के आह्वान के अनुयायी लड़के-लड़कियों की उपासना इत्यादि बातों में मदद करते थे। यहीं मैं पहले-पहल जान सकी कि भगवान की पुकार पर चलकर हमें दीन-दरिद्रों की सेवा के काम में अपने को लगाना होगा।

प्रश्न : तो क्या नवजीवन का सूत्रपात यहीं से हुआ?

माँ टेरेसा : हाँ, 1922 ई० में।

प्रश्न : अपने जीवन की मौज-मस्ती को चरितार्थ करने के लिए नहीं, तो क्या अपने को विशेष रूप से ईश्वर के चरणों में समर्पित करने के उद्देश्य से ही नया जीवन शुरू किया?

माँ टेरेसा : मैंने धर्म में, परार्थ के काम में अपने को लगाना चाहा। जिन देशों में मिशनरीज के कामकाज हैं उन्हीं देशों में यीशु के दिखाये पथ पर मनुष्य की सेवा में अपने को नियुक्त करने की इच्छा हुई थी। ठीक उसी समय यूगोस्लाविया से कई धर्मप्रचारक या मिशनरी भारत आये। उन्होंने ही एक दिन मुझसे कहा, "लोरेटो के सन्यासी कलकत्ता और दूसरी जगहों में काम करते हैं।" मैं 'बंगाल मिशन' में जाने को तैयार हो गयी। और वहाँ से ही 1929 ई० में उन्होंने

मुझे भारत भेज दिया।

प्रश्न : आपने यह स्वेच्छा की शपथ कब ली ?

माँ टेरेसा : मैंने पहले-पहल लोरेटो में 1931 ई० में शपथ ली। इसके छः वरस बाद 1937 ई० में इस शपथ ने अंतिम रूप लिया।

प्रश्न : बारह वरस के कुमारी जीवन और अंतिम शपथ लेने के बीच आपके मन में क्या कभी कोई दुविधा, द्वंद्व, संदेह नहीं उपजा ? विशेष रूप से संन्यासी जीवन की कठोरतर बात सोचकर ?

माँ टेरेसा : पहले, बारह से सोलह-सत्रह वरस तक मैंने संन्यासिनी बनना नहीं चाहा। मेरा परिवार बहुत सुखी था। किंतु किशोरावस्था पार कर पाँव रखने के साथ ही मैंने घर छोड़कर संन्यासिनी बनने का निश्चय किया। और तभी से, लंबे चालीस वरसों में, मेरे मन में क्षण-भर के लिए भी संदेह नहीं हुआ कि मेरे निश्चय में ज़रा भी त्रुटि है। अर्थात, हमारा निश्चय सही है। वह हर क्षण विचित्र अनुभव कर सकें, यह भगवान की ही इच्छा है।

प्रश्न : और आपकी शांति और सुख के मूल में वही निश्चय है। यही न ?

माँ टेरेसा : यह सुख मुझसे कोई नहीं छीन सकता।

प्रश्न : आप लोरेटो में पढ़ाती थीं। क्या आपको पढ़ाना अच्छा लगता था ?

माँ टेरेसा : पढ़ाने को मैं सबसे अधिक प्यार करती हूँ। लोरेटो में मैं बँगला विभाग (बंगाली मीडियम) में थी। जो सिस्टर अब मेरे साथ हैं उनमें से बहुतेरी उस समय मेरी छात्राएँ थीं।

प्रश्न : इस सबकी समाप्ति तब हुई जब आप किसी अपार्थिव काम के लिए उद्यत हुईं ?

माँ टेरेसा : हाँ, धर्म की पुकार मुझे सुननी ही पड़ी। यह दूसरी बार की पुकार थी। लोरेटो का सुंदर परिवेश छोड़कर सड़क पर ग़रीबों के बीच आने का ही यह आह्वान था। दीन-दरिद्रों की सेवा में ही तो भगवान की सेवा की कुंजी है।

प्रश्न : दूसरी बार का आह्वान कैसे हुआ ?

माँ टेरेसा : 1946 ई० में मैं दार्जिलिंग जा रही थी। ट्रेन के डिब्बे में बैठे-बैठे मैंने वह आह्वान सुना। मानो किसी ने अचानक मुझसे कहा हो, 'सब त्याग कर मेरे पीछे आओ। बस्ती-बस्ती में दरिद्रतम मनुष्य की सेवा करने से ही मेरी सेवा होगी।'

प्रश्न : इसलिए ट्रेन में बैठे-बैठे ही आपने अपने जीवन का सबसे बड़ा निश्चय किया ? हृदय के अंतरतल की पुकार को अपने जीवन का साथी बनाया ?

माँ टेरेसा : मैं जानती थी कि यह उनकी ही इच्छा है। यह भी जानती थी कि मुझे उनका ही अनुसरण करना होगा। यह जानकार भी मैंने चर्च का निश्चय

जानना चाहा था।

प्रश्न : आपने लोरेटो कॉन्वेंट से बाहर आने के उद्देश्य से धर्म के अधिकारियों से अनुमति लेने की प्रार्थना की थी? इसको मिलने में कितनी देर लगी?

माँ टेरेसा : मैंने पहले कलकत्ता के आर्चबिशप से आवेदन किया। आर्चबिशप से अनुमोदन पाने के बाद रोम को लिखकर भेजना होता है, जिसकी लोरेटो की संन्यासिनियों की मदर-जनरल अनुमति देती हैं। जिस के लिए मैंने अंतिम शपथ ली थी उसी के लिए सन्यासिनी रूप में कॉन्वेन्ट छोड़ने के पहले मुझे सर्वोच्च अधिकारी से अनुमति लेनी ही पड़ी। होली फादर पोप पायस बारहवें को सब-कुछ लिखकर बताया। साथ ही वापसी डाक से 12 अप्रैल को अपनी चिट्ठी का जवाब पाया। होली फ़ादर ने बताया कि मैं बाहर जा सकती हूँ और संलग्न ही संन्यासिनी के रूप में उपदेश दिया। अर्थात, उन्होंने कलकत्ता के आर्चबिशप के अधीन धर्म के काम में आगे बढ़ने को कहा।

प्रश्न : यह कितने बरस पहले की घटना है?

माँ टेरेसा : वह 1948 ई० था।

प्रश्न : पोप को चिट्ठी में आपने अपने अभिप्रेत काम के संबंध में क्या लिखा?

माँ टेरेसा . *मैंने चिट्ठी में लिखा कि ईश्वर मुझे सर्वस्व त्यागकर बस्तियों* में उपेक्षित ग़रीब-से-ग़रीब लोगों की सेवा में बार-बार बुला रहे हैं। भगवान कह रहे हैं, दरिद्रों की सेवा का अर्थ उनकी पूजा करना है।

प्रश्न : लोरेटो कॉन्वेन्ट स्कूल के सुंदर उद्यान के प्रांगण के उस शांत, स्निग्ध परिवेश से बाहर कोलाहल-भरी राहों पर निकल आना क्या बहुत कठिन नहीं है?

माँ टेरेसा : त्याग तो इतना ही था!

प्रश्न : इसके बाद आपने क्या किया?

माँ टेरेसा मैंने लोरेटो कॉन्वेन्ट छोड़ दिया। प्राथमिक चिकित्सा के काम में ट्रेनिंग लेने के उद्देश्य से पटना में सिस्टरों के पास गयी। ग़रीबों की कुटियों में जाने के पहले यह ट्रेनिंग बहुत जरूरी है। तब तक मैं एक अध्यापिका थी और अध्यापन को लेकर मेरे लिए उस समय काम करना संभव न था। पहले 'होम्स' में गयी। वहाँ शिशुओं को, रोगी व्यक्तियों को देखा। पहले मैंने एक बहुत छोटा स्कूल शुरू किया। उस स्कूल की छात्र-संख्या कुल पाँच शिशु थी। धीरे-धीरे शिशुओं की संख्या बढ़ने लगी। अब वहाँ पढ़ने वालों की संख्या पाँच सौ से ऊपर है।

प्रश्न : जहाँ आपने पहले शुरू किया था?

माँ टेरेसा : हाँ, बस्ती में एक परिवार के रहने की जगह के सामने एक टुकड़ा खुली जगह में।

प्रश्न : माँ, कलकत्ता के समान भीड़-भरे शहर में आप किस तरह एक बात सोचकर ही काम के लिए निकल पड़ीं? न आपकी कहीं कोई जगह थी, न ही आर्थिक सामर्थ्य। वह होने पर भी इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी सर पर लेकर चटपट चली आयीं?

माँ टेरेसा : मैं उस समय पूर्णतया निश्चित थी, और मैं अब भी जी-जान से विश्वास करती हूँ कि यह सब उनका ही काम है, मैं कुछ नहीं हूँ। इसी कारण से मुझे डर न लगा। मैं जानती थी कि काम अगर मेरा ही होगा तो मेरी मृत्यु के साथ-साथ मेरे काम की भी मृत्यु हो जायेगी। इसी एक विश्वास से मैं समझ गयी कि यह उनका काम है। मेरी मृत्यु के बाद भी यह काम जीवित रहेगा और ग़रीबों का भला करेगा।

प्रश्न : फुटपाथ के लड़के-लड़कियों को आप क्या सिखाती हैं?

माँ टेरेसा : धर्म नहीं, वर्ण-परिचय से मैं उनकी शिक्षा शुरू करती हूँ। यद्यपि इन लड़कों की उम्र बहुत अधिक होती है, ये कभी स्कूल नहीं गये। कोई स्कूल इन्हें लेना भी नहीं चाहता। इसके बाद स्वास्थ्य-रक्षा के संबंध में हम कुछ प्रारंभिक शिक्षा देते हैं। किस तरह से अपने को साफ़-सुथरा रखा जाये, यह उनको समझाया। जिस स्कूल में मैं इन्हें पढ़ाती थी उस स्कूल की तीन लड़कियाँ दूसरे दिन मेरे पास आयीं। इन तीन लड़कियों की सहायता से और भी छात्र मिले। इसी तरह काम शुरू हुआ। जिस स्कूल में मैं पहले पढ़ाती थी वहाँ की कई अध्यापिकाओं ने आकर मेरा साथ दिया। जी-जान से लग गये। शाखा-प्रशाखाएँ बढ़ने लगीं।

प्रश्न : आपके पास रुपया-पैसा निश्चय ही रहा होगा! कहाँ से मिला?

माँ टेरेसा : पहले मेरी टेंट में थे केवल पाँच रुपये। किंतु जन-साधारण ने जब धीरे-धीरे हमारे काम के संबंध में जाना तो वे ही रुपये-पैसे, सर-सामान देकर हमारी सहायता करने लगे। यह सब ईश्वर की दया है। पहले दिन से ही रुपयों के लिए हमें किसी के पास हाथ नहीं पसारना पड़ा। हमारी ज़रूरत के मुताबिक़ रुपये आते रहे।

प्रश्न : क्या सारा-का-सारा दान अपनी इच्छा से दिया गया था?

माँ टेरेसा : हाँ, सब दान के रूप में मिला था। दरिद्रों की सेवा में ही मैंने भगवान को प्यार किया है।

प्रश्न : आपका स्कूल शुरू हुआ। आपके काम में सहायता करने के लिए भी कुछ लोग आगे आये। इस तरह आपको कुछ रुपये भी मिले। इसके बाद क्या हुआ?

माँ टेरेसा : सिस्टरों ने सन् 1949 ई० से आना शुरू किया। पहली सिस्टर का नाम अग्नेस है। वह मेरी पहली सहकर्मी थीं।

प्रश्न : क्या सिस्टर अग्नेस लोरेटो में आपकी छात्रा थीं?

माँ टेरेसा : हाँ, पहले जिन दस लड़कियों ने अपने को सेवा के काम में ईश्वर की आराधना मे निवेदित किया वे सब मेरी स्कूल की छात्राएँ थी। उन्होंने सब-कुछ ईश्वर को समर्पित कर दिया। धीरे-धीरे और भी बहुतों ने साथ दिया। डॉक्टर, नर्स, समाजसेवी—कोई भी बाक़ी न रहे।

(सीधे माँ से न जानने पर भी एक दूसरे सूत्र से पता चला कि पहली दस लडकियो में अधिकांश बगाली थी।)

प्रश्न : माँ, कालीघाट के 'निर्मल हृदय' के मुमूर्षु लोगों के लिए, आप क्या कर सकी ? 'निर्मल हृदय' मे जाने पर तो लगता है कि यहाँ ले आने के बाद मृत्यु के सिवा और क्या आशा की जा सकती है ?

माँ टेरेसा . सबसे पहले हम इन्हें यह बताना चाहते हैं कि उन्हें प्यार करने वाले लोग इस दुनिया मे है। मृत्यु तो अवश्यभावी है; मृत्यु के सामने जाने के पहले उनको थोड़ा प्यार, थोड़े-से स्नेह का स्पर्श मिल सके, यही यहाँ लाने की एक सार्थकता है।

प्रश्न : जो मरते नही, जी जाते हैं, उनके लिए क्या करती हैं ?

माँ टेरेसा : जो काम कर सकते हैं उनके लिए कुछ काम-काज तलाश करने की कोशिश करती हूँ। औरो को 'होम' मे भेज देती हूँ। वहाँ वे कई बरस सुख-शाति से बिता सकते हैं।

प्रश्न : इनको यहाँ कौन ले आते हैं, माँ ?

माँ टेरेसा पहले तो सिस्टरें ही सड़को पर से उठाकर लाती थी।

प्रश्न : जिस तरह पहले आप महिला को सडक पर से उठाकर लायी थी ?

माँ टेरेसा : हाँ, कष्ट मे पड़े मुमूर्षु लोगो में जब इस 'स्वर्ग' की चर्चा फैली तो बहुतों ने इस स्वर्गद्वार पर मुमूर्षुओं को पहुँचाना शुरू किया। इस तरह का कोई आदमी राह मे पड़ा देखते ही वे ऐम्बुलेंस के लिए फोन कर देते हैं। फोन पाकर ऐम्बुलेंस घटनास्थल से सबंधित व्यक्ति को लेकर हमारे यहाँ ले आती है।

(जिनका कोई नही होता उनके लिए यह 'होम' है। माँ ने इसका नाम 'निर्मल हृदय' रखा है।)

प्रश्न : पहले कुछ बरसों मे सिस्टरो की संख्या किस दर से बढ़ी है ?

माँ टेरेसा · पहले तो कुल मिलाकर केवल बारह सिस्टर थी। यह 1950 ई० की बात है। धीरे-धीरे सख्या बढने लगी। दस बरस तक हम कलकत्ता के बाहर कही नहीं गये। उसका कारण है कि हमें सिस्टरो को ट्रेनिंग देनी पडी थी। 1959 ई० में हमने कलकत्ता के बाहर एक भवन स्थापित किया। इसके बाद दिल्ली मे। तमाम महिलाएँ अपने-आप आने लगी। जिस जगह भवन बनता वहाँ हमें इस प्रकार की लड़कियाँ स्वत. मिल जाती।

प्रश्न : अधिकतर लड़कियाँ किस वर्ग की थी ?

प्रश्न : माँ, कलकत्ता के समान भीड़-भरे शहर में आप किस तरह एक बात सोचकर ही काम के लिए निकल पड़ीं ? न आपकी कहीं कोई जगह थी, न ही आर्थिक सामर्थ्य। वह होने पर भी इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी सर पर लेकर चटपट चली आयीं ?

माँ टेरेसा : मैं उस समय पूर्णतया निश्चित थी, और मैं अब भी जी-जान से विश्वास करती हूँ कि यह सब उनका ही काम है, मैं कुछ नहीं हूँ। इसी कारण से मुझे डर न लगा। मैं जानती थी कि काम अगर मेरा ही होगा तो मेरी मृत्यु के साथ-साथ मेरे काम की भी मृत्यु हो जायेगी। इसी एक विश्वास से मैं समझ गयी कि यह उनका काम है। मेरी मृत्यु के बाद भी यह काम जीवित रहेगा और ग़रीबों का भला करेगा।

प्रश्न : फुटपाथ के लड़के-लड़कियों को आप क्या सिखाती हैं ?

माँ टेरेसा : धर्म नहीं, वर्ण-परिचय से मैं उनकी शिक्षा शुरू करती हूँ। यद्यपि इन लड़कों की उम्र बहुत अधिक होती है, ये कभी स्कूल नहीं गये। कोई स्कूल इन्हें लेना भी नहीं चाहता। इसके बाद स्वास्थ्य-रक्षा के संबंध में हम कुछ प्रारंभिक शिक्षा देते हैं। किस तरह से अपने को साफ़-सुथरा रखा जाये, यह उनको समझाया। जिस स्कूल में मैं इन्हें पढ़ाती थी उस स्कूल की तीन लड़कियाँ दूसरे दिन मेरे पास आयीं। इन तीन लड़कियों की सहायता से और भी छात्र मिले। इसी तरह काम शुरू हुआ। जिस स्कूल में मैं पहले पढ़ाती थी वहाँ की कई अध्यापिकाओं ने आकर मेरा साथ दिया। जी-जान से लग गये। शाखा-प्रशाखाएँ बढ़ने लगीं।

प्रश्न : आपके पास रुपया-पैसा निश्चय ही रहा होगा ! कहाँ से मिला ?

माँ टेरेसा : पहले मेरी टेंट में थे केवल पांच रुपये। किंतु जन-साधारण ने जब धीरे-धीरे हमारे काम के संबंध में जाना तो वे ही रुपये-पैसे, सर-सामान देकर हमारी सहायता करने लगे। यह सब ईश्वर की दया है। पहले दिन से ही रुपयों के लिए हमें किसी के पास हाथ नहीं पसारना पड़ा। हमारी ज़रूरत के मुताबिक़ रुपये आते रहे।

प्रश्न : क्या सारा-का-सारा दान अपनी इच्छा से दिया गया था ?

माँ टेरेसा : हाँ, सब दान के रूप में मिला था। दरिद्रों की सेवा में ही मैंने भगवान को प्यार किया है।

प्रश्न : आपका स्कूल शुरू हुआ। आपके काम में सहायता करने के लिए भी कुछ लोग आगे आये। इस तरह आपको कुछ रुपये भी मिले। इसके बाद क्या हुआ ?

माँ टेरेसा : सिस्टरों ने सन् 1949 ई० से आना शुरू किया। पहली सिस्टर का नाम अग्नेस है। वह मेरी पहली सहकर्मी थीं।

प्रश्न : क्या सिस्टर अग्नेस लोरेटो में आपकी छात्रा थीं ?

माँ टेरेसा : हाँ, पहले जिन दस लड़कियों ने अपने को सेवा के काम में ईश्वर की आराधना में निवेदित किया वे सब मेरी स्कूल की छात्राएँ थी। उन्होंने सब-कुछ ईश्वर को समर्पित कर दिया। धीरे-धीरे और भी बहुतों ने साथ दिया। डॉक्टर, नर्स, समाजसेवी—कोई भी बाकी न रहे।

(सीधे माँ से न जानने पर भी एक दूसरे सूत्र से पता चला कि पहली दस लड़कियों में अधिकांश बंगाली थी।)

प्रश्न : माँ, कालीघाट के 'निर्मल हृदय' के मुमूर्षु लोगों के लिए, आप क्या कर सकी ? 'निर्मल हृदय' में जाने पर तो लगता है कि यहाँ ले आने के बाद मृत्यु के सिवा और क्या आशा की जा सकती है ?

माँ टेरेसा : सबसे पहले हम इन्हें यह बताना चाहते हैं कि उन्हें प्यार करने वाले लोग इस दुनिया में हैं। मृत्यु तो अवश्यंभावी है; मृत्यु के सामने जाने के पहले उनको थोड़ा प्यार, थोड़े-से स्नेह का स्पर्श मिल सके, यही यहाँ लाने की एक सार्थकता है।

प्रश्न : जो मरते नहीं, जी जाते हैं, उनके लिए क्या करती हैं ?

माँ टेरेसा : जो काम कर सकते हैं उनके लिए कुछ काम-काज तलाश करने की कोशिश करती हूँ। औरों को 'होम' में भेज देती हूँ। वहाँ वे कई बरस सुख-शांति से बिता सकते हैं।

प्रश्न : इनको यहाँ कौन ले आते हैं, माँ ?

माँ टेरेसा : पहले तो सिस्टरें ही सड़कों पर से उठाकर लाती थी।

प्रश्न : जिस तरह पहले आप महिला को सड़क पर से उठाकर लायी थी ?

माँ टेरेसा : हाँ, कष्ट में पड़े मुमूर्षु लोगों में जब इस 'स्वर्ग' की चर्चा फैली तो बहुतों ने इस स्वर्गद्वार पर मुमूर्षुओं को पहुँचाना शुरु किया। इस तरह का कोई आदमी राह में पड़ा देखते ही वे ऐम्बुलेंस के लिए फ़ोन कर देते हैं। फ़ोन पाकर ऐम्बुलेंस घटनास्थल से सबंधित व्यक्ति को लेकर हमारे यहाँ ले आती है।

(जिनका कोई नहीं होता उनके लिए यह 'होम' है। माँ ने इसका नाम 'निर्मल हृदय' रखा है।)

प्रश्न : पहले कुछ बरसों में सिस्टरों की संख्या किस दर से बढ़ी है ?

माँ टेरेसा : पहले तो कुल मिलाकर केवल बारह सिस्टर थी। यह 1950 ई० की बात है। धीरे-धीरे संख्या बढ़ने लगी। दस बरस तक हम कलकत्ता के बाहर कहीं नहीं गये। उसका कारण है कि हमें सिस्टरों को ट्रेनिंग देनी पड़ी थी। 1959 ई० में हमने कलकत्ता के बाहर एक भवन स्थापित किया। इसके बाद दिल्ली में। तमाम महिलाएँ अपने-आप आने लगी। जिस जगह भवन बनता वहाँ हमें इस प्रकार की लड़कियाँ स्वतः मिल जातीं।

प्रश्न : अधिकतर लड़कियाँ किस वर्ग की थी ?

माँ टेरेसा : अधिकतर मध्यवर्ग के परिवारों की थीं। कुछ धनी घरों की भी थीं।

प्रश्न : क्या वे पढ़ी-लिखी थीं ?

माँ टेरेसा : अधिकतर सुशिक्षित थीं।

प्रश्न : उच्च मध्यवर्ग की लड़कियों के लिए अनाथ, पंगु, उपेक्षित, मुमूर्षु लोगों में काम करना क्या बहुत मुश्किल काम न था ?

माँ टेरेसा : इन युवतियों ने जीवन का सर्वस्व मिटा देना चाहा था। भगवान के निकट उन्होंने अपना जीवन सौंप दिया था। सब-कुछ उनके ही चरणों में निवेदन करने में ही उनका जीवन सार्थक था। मान-सम्मान सब-कुछ छोड़कर मानव-सेवा में ही उन्होंने ईश्वर को पाना चाहा। असीम करुणा के आधार ईश्वर की बात कभी उनका हृदय भूल न जाये। उनकी ही कृपा से दरिद्रतम मनुष्य की सेवा का सुअवसर इन्हें मिला।

प्रश्न : ग़रीबों की सेवा में सब-कुछ मिटा देने की यह शक्ति इनको कहाँ से प्राप्त हुई ?

माँ टेरेसा : जिस दिन उन्होंने इस सेवाव्रत में अपने को नियुक्त किया उस दिन से ही हम अपने सेवा के काम के संबंध में इनके साथ विचार-विमर्श करते हैं। भगवान के निकट इच्छा पूर्ण करने की बात लेकर भी बातचीत होती है। प्रार्थना में आध्यात्मिक-शक्ति-संग्रह करती हैं और उस शक्ति से बलवती होकर उन्हें बस्तियों में जाना होता है। बस्तियों में काम और वहाँ के लोगों के साथ मिलना-जुलना—यह दोनों ही ट्रेनिंग में सम्मिलित होते हैं। सामान्यतः ट्रेनिंग के प्रथम चरण में 'नोविसेज़'—नये लोग—बाहर नहीं जाते। लेकिन हमारी चौथी प्रतिज्ञा—दरिद्र-से-दरिद्र मनुष्य की सेवा करना, दरिद्रवेश में यीशु की सेवा करने के लिए ही तो इस मिलने-जुलने की ज़रूरत है। उसी कारण से यह दरिद्रतम व्यक्ति का सामना करती हैं। उनके जीवन की धारा किस ओर बहेगी, उस संबंध में पूरी जानकारी पाना इनको जरूरी होता है। दरिद्रतम मनुष्य के सुख-दुख के बीच यीशु को, यीशु के अस्तित्व को, चौबीसों घंटे प्राप्त करने की तैयारी के पहले पूर्ववर्ती जानकारी जमा करने का क्षेत्र ये बस्तियाँ हैं।

प्रश्न : यह तो कठिन साधना है ! क्या सभी इस काम को सहज भाव से ले पायी हैं ?

माँ टेरेसा : बहुत कम, बहुत ही कम संख्या में सिस्टर चली गयी हैं। जो-कुछ चली गयी हैं उन्हें उँगलियों पर गिनकर बताया जा सकता है। यह सचमुच खुशी की बात है कि पहले से ही इतनी अधिक संख्या में सिस्टर विश्वास के साथ काम करती रही हैं।

प्रश्न : इस कठिन परीक्षा में से ही उन्होंने पूर्णता का स्वाद पाना चाहा था ?

मां टेरेसा : उनके लिए यह 'चैलेंज' की तरह है। उन्होंने सब-कुछ छोड़ना चाहा था। कठिनतम जीवन के सामने खड़ा होना चाहा। इस जीवन को जी-जान से प्यार करना होगा, दरिद्रता को अलंकार बनाकर हर एक के बीच काम करने जाना होगा। भगवान के प्रति प्यार की प्रतिमूर्ति ही यह काम है। हमारे प्यार का स्पर्श किसी-न-किसी के लिए तो निर्दिष्ट है ही।

प्रश्न : कालीघाट का 'निर्मल हृदय', आचार्य जगदीश वसु रोड पर 'निर्मला शिशु-भवन', दमदम में 'निर्मला केनेडी केंद्र' या पार्क स्ट्रीट पर सिस्टरों का निवास स्थान—जहां भी गया वहां ही सिस्टरों की आँखों और चेहरों पर प्रसन्नता का भाव देखा। इस कठोर जीवन में जिस प्रकार वे सदा चेहरे पर हँसी खिलाये रहती हैं वह सचमुच अकल्पनीय है !

मां टेरेसा : यही तो दिन-रात हमारी सोसायटी की शक्ति के मूल में काम करता रहता है। स्वय का उनके ही चरणकमलों मे समर्पण, प्रेम का विश्वास, आनंद—यही हमारा मूलघन है। धन से ही क्या सेवा होती है ?

मां बोली, "नहीं, केवल धन से ही सेवा नहीं होती। सेवा का हृदय चाहिए। अस्पताल के डॉक्टर, नर्स भी तो सेवा करते हैं। उस सेवा मे प्यार का स्पर्श भी है या नही, वही देखने की बात है। प्यार की दुनिया में धोखे के लिए कोई स्थान नहीं है। मुंह से नहीं, काम से समझाना होगा कि हम उन्हें प्यार करते हैं। प्यार करते हैं हृदय के अन्तस्तल से। इसीलिए हमेशा इनके पास प्रसन्न मन से जाना होगा। दुखी मन लेकर जाने से ये दुखी लोग और भी टूट जायेंगे।"

प्रश्न : ये लोग क्या देने से खुश होंगे ? इन सब उपेक्षितों को कुछ चीजें देने की जरूरत है ?

मां टेरेसा : हमेशा उन्हें कुछ देना हो, ऐसी बात नही है। जो हम देते हैं वे लोग वही चाहते हैं। अधिकतर लोग पाना चाहते हैं। इन पच्चीस बरसों में लोगों से मिलकर हमे क्रमश. यह स्पष्ट हो गया है कि 'हमें कोई नहीं चाहता'—यही भावना सबसे बड़ा रोग है। मनुष्य के जीवन मे इससे बड़ा और कोई अभिशाप नहीं हो सकता। आजकल कुष्ठ रोग अच्छा करने की दवा है। टी० बी० अच्छी हो जाती है। लेकिन 'मैं अवांछित हूँ, मुझे कोई नही चाहता' का-सा भयानक रोग और कोई है, यह मुझे नहीं मालूम। इस रोग को दूर करने की एक ही औषधि है। और वह है—प्यार।

प्रश्न : इस भयानक रोग से छुटकारा देना ही आपका, आपकी सिस्टरों के जीवन का एकमात्र लक्ष्य है ?

मां टेरेसा : हमारा लक्ष्य यही है। दरिद्रतम व्यक्ति को यीशु समझकर उसकी सेवा करना, उसे प्यार करना।

प्रश्न : मुमूर्षु के सिवा अनाथ शिशुओं की बात भी आपको सोचनी पड़ती है ?

माँ टेरेसा : हाँ।

प्रश्न : ये सारे बच्चे कहाँ से आते हैं ?

माँ टेरेसा : अधिकतर बच्चे माँ-बाप के निकट अवांछित होते हैं। सड़क पर से, हावड़ा और सियालदह स्टेशन से हम इन्हें उठा लाते हैं। माँ-बाप ही अपने बच्चे-बच्चियों को छोड़कर चले जाते हैं। कारागार में से, पुलिस की हिफ़ाजत में से भी हमें परित्यक्त बच्चे मिलते हैं। जहाँ से भी आयें, और जिस हालत में भी आयें, हमने आज तक एक बच्चे को भी लौटाया नहीं।

(माँ के दरवाजे पर जो एक बार आ जायेगा वह लौटकर नहीं जायेगा। जिस तरह भी हो, उसकी व्यवस्था हो जाती है।)

माँ बोलीं, "एक अतिरिक्त बच्चे के लिए सदा एक सीट अधिक रहती है, यह कहा जा सकता है।"

प्रश्न : तो आपको कभी किसी को वापस नहीं भेजना पड़ा ?

माँ टेरेसा : न।

इकतीस

पुरानी कुटिया में या किसी बस्ती में घूमते-घूमते कोई कुमारी लड़की जब माँ की सेवा की बातें गरीबों के मुँह से सुनती है तो उसका मन भी रो पड़ता है। वह लड़की भी इसी तरह सेवा करना चाहती है। लेकिन क्या उसे फ़ौरन अवसर मिल जाता है ?

माँ बोलीं, "उन्हें अवसर निश्चय ही मिलेगा।"

सेवा की भावना लेकर जब ये सब कम उम्र की लड़कियाँ आती हैं तो उन्हें हाथ बटाने को कहा जाता है। छः महीने का काम-काज देखकर वे बात को समझने का प्रयत्न करती हैं। अनुभव, अनुभूति के द्वारा समझना होगा कि भगवान उनके माध्यम से यह काम करवाना चाहते हैं। इनका मन-प्राण ईश्वर के प्रति निवेदित है या नहीं, यह भी जाँच लेना पड़ता है।

माँ खुद बँगला-हिंदी में बहुत अच्छी बातचीत कर लेती हैं। किंतु सोसायटी में विविध भाषा-भाषी सिस्टरों और ब्रदरों के काम की सुविधा के लिए अँग्रेजी जानना जरूरी है। भारतीय भाषाओं में आध्यात्मिक चेतना पाने की पुस्तकें हैं। लेकिन उनके अँग्रेजी में न रहने से सिस्टरों को अँग्रेजी में प्रकाशित बाहरी पुस्तकें

पढ़नी पड़ती है। इसके बाद पौरोहित्य स्वीकृति पाने के लिए इन्हें छः महीने तक आध्यात्मिक जीवन का प्रारंभिक पाठ लेना पड़ता है। प्रारंभिक पाठ के बाद दो वरस धर्म-संप्रदाय के प्रशिक्षार्थी के रूप में रहना पड़ता है। इन्ही दिनों कष्ट-साधना चलती है। मिशनरीज ऑफ चैरिटीज के नियम व अनुशासन से भी सिस्टरों का परिचय कराना होता है। उसका कारण है कि सिस्टर अपने जीवन-मन-प्राण से जो काम करने चली हैं उनके उद्देश्यों के संबंध में सम्यक ज्ञान होना वांछनीय है।

दरिद्रता को जीवन-साथी बना लेना बहुत आसान काम नहीं है। गरीब को प्यार करने मे, गरीब को जानने के लिए, उनकी निकटता प्राप्त करने के लिए सिस्टरों को भी गरीब-जीवन का अभ्यस्त बनना पड़ेगा। प्यार का सब-कुछ यीशु के चरणकमलों मे समर्पित है—इस पवित्रता की शपथ प्रत्येक सिस्टर ने ली है। मिशन के अनुशासन के अनुसार इन्होंने और भी शपथें ली हैं। सब-कुछ उन (ईश्वर)की इच्छा है—इसी विश्वास पर जीवन का आदि और अंत आधारित है। एक चीज का और पालन करना होता है। और वह है अंत तक गरीबो की सेवा मे प्राण दे देना। सब-कुछ दातव्य है। अर्थात धनियों के लिए ये कभी काम न कर सकेंगे। या काम के विनिमय में किसी से भी कोई कभी एक धेला भी न ले सकेगा। बिना पैसे के इस सेवा और प्यार के पात्र ग़रीब लोग है।

प्रश्न : ऐसा है तो आप सिस्टरों से बहुत प्रत्याशा करती हैं। बताइये, सही है या नही? इन लड़कियों को ग़रीब-से-गरीब व्यक्ति की तरह जीवन बिताना पड़ेगा। सिर्फ वही नही, जीवन की शक्ति, प्रेम—सब-कुछ इन्हें दरिद्रनारायण की सेवा मे मिला देना होगा।

माँ टेरेसा : वे तो वही देना चाहती है। वे भगवान को सब-कुछ देकर प्राप्त करना चाहती हैं। वे अच्छी तरह से जानती हैं कि यीशु कभी नंगे, कभी भूखे, कभी आश्रयहीन—तरह-तरह के वेश में हमारे सामने आते हैं। हम तो इस तरह ही यीशु की सेवा करती हैं, प्यार करती हैं। सिस्टरें भी इसे अच्छी तरह समझती हैं। और इसीलिए वे खुश है। वे इतने दिनों तक जिस चीज को खोजती रही थीं वह उनकी मुट्ठी मे आ जाने से वे भी प्रसन्न हैं। यह तो अनुभूति की चीज है। जबरदस्ती से या रुपये-पैसे से यह प्रसन्नता नहीं मिलती। यह तो हृदय के [illegible] से आती है।

प्रश्न : आपके आगे पहाड़ की तरह काम है, और आपकी [illegible] सीमित है। आपके या आपकी सिस्टरों के अगाध विश्वास [illegible] काम करना संभव है? आप क्या कभी निरुत्साहित नहीं होतीं? [illegible] धारणा है कि इस तरह के बहुत बड़े काम को [illegible] को लेना ही संभव है। उनका विश्वास है कि [illegible]

बहुतेरी सिस्टरों को इतने बड़े धर्म-यज्ञ में उतर पड़ना अवास्तविक बात है। इस संबंध में आपने क्या कुछ सोचा है?

माँ टेरेसा : हम यदि काम को अपने धर्मचक्षुओं से देखें तो यही लगना स्वाभाविक है कि हम कुछ भी नहीं कर सकेंगे। लेकिन इसको जैसे ही मात्र यीशु का काम समझ लिया तब फिर कोई बाधा बाधा नहीं लगेगी। और इसी कारण से यह काम करना संभव हुआ है। हम इस बात में निश्चित हैं कि वे (यीशु) ही हमसे काम करवा लेते हैं। ग़रीबों के लिए जो-कुछ होता है वह तो उन्हीं की इच्छा से पूरा होता है।

प्रश्न : तो सारी अनुप्रेरणा के स्रोत वे ही हैं?

माँ टेरेसा : हाँ, सब-कुछ यीशु के पास से आता है।

प्रश्न : इसीलिए क्या प्रार्थना से आपके दिन का प्रारंभ होता है?

माँ टेरेसा : हाँ। इसको छोड़कर हम कुछ नहीं कर सकते। यीशु की मूर्ति के आगे घुटने टेककर प्रार्थना करते समय हम ग़रीबों के दुख और कष्टों की तसवीर देख सकते हैं। सब-कुछ हमारे मानस-पटल पर तैर जाता है। और वहाँ बैठकर हम अनुभव कर सकते हैं। यह दुख, कष्ट ही वृहत्तर प्रेम के राज्य में प्रवेश का वृहत्तर मार्ग है।

प्रश्न : इस सबके पीछे है विश्वास। यह विश्वास ही आज दुनिया में दुर्लभ चीज़ है। लेकिन क्यों? विश्वास हमारे जीवन से अन्तर्हित क्यों हुआ है?

माँ टेरेसा : विश्वास नामक चीज भगवान का दान है। इसके बिना जीवन नहीं चल सकता। भगवान के प्रति निवेदित कामकाज तभी सार्थक होगा जब सब-कुछ गहरे विश्वास से उत्पन्न होगा। क्यों, यीशु ने ही तो कहा है, 'मैं क्षुधार्त्त हूँ, मैं रोगी हूँ, मैं नंगा हूँ और मैं बेघर हूँ—मुझको तुम ऐसा ही समझकर मेरी सेवा करो।" यह बातें याद करते हुए ही हमें राह तय करनी होगी।

प्रश्न : विश्वास नामक चीज़ का अभाव वर्तमान जगत में अत्यंत भीषण दिखाई दे रहा है। इस विश्वास का हृदय में पोषण करने की कुंजी कहाँ है?

माँ टेरेसा : इसका कारण है कि अधिकांश लोग स्वार्थपरता और व्यक्तिगत लाभालाभ लेकर ही अपने में मग्न हैं। प्रेम का अकुंठित प्रतिदान किये बिना विश्वास उत्पन्न नहीं होता। प्यार और विश्वास समानार्थक न होने पर भी इन दोनों की गति एक ही है। एक-दूसरे का परिपूरक है।

प्रश्न : हम जो स्वार्थ में अंधे हैं वे इस पथ पर कैसे चलेंगे? अथवा किस प्रकार प्रेम के संसार में प्रवेश करना संभव है?

माँ के कहने के अनुसार : लोगों के साथ मिलना-जुलना होगा। उनको समझना होगा। आदमी में ही भगवान मौजूद हैं। उसी 'सीमा के अंदर असीम' की तरह इस मनुष्य में ही सर्वशक्तिमान ईश्वर नये-नये रूपों में प्रकाशित हैं। हम

यीशु को देख नही सकते, हम अपने प्यार को उन्हे प्रत्यक्ष रूप में जता नही सकते। किन्तु हम अपने पडोसियों को हमेशा देख सकते हैं। यीशु को देखकर हम जो कुछ करते, वही यीशु समझकर हम अपने पड़ोसी गरीव आदमियो के लिए कर सकते हैं।

इस सेवा के काम मे भी पग-पग पर विपत्ति की आशका है। हमे सदा एक बात याद रखनी होगी—हम जो भी करें, सब उनके लिए। हर बस्ती में, पुरानी झोंपड़ियों में, अनाहार में, अनादर में जो समय काट रहे हैं वे भी हमारी ही तरह सुख-दुख मे निर्मित मनुष्य हैं—इस बात को हम कभी न भूलें। गरीब की उपेक्षा करने में अपने अहम् को प्रकट करने के सिवा और कोई बड़ी बात नही है। फिर अगर ये सब लोग गरीवो के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करें तो संसार का स्वरूप ही दूसरा हो जाये।

मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़ के भवन मे एक दिन सवेरे गया था। माँ उन दिनों अमरीका में थी। असिस्टेंट मदर-जनरल सिस्टर अग्नेस के साथ बहुत-से विषयों पर बातचीत कर रहा था। सवेरे के दस-साढे दस बजे होंगे। सहसा एक युवक आया। कुछ कहने के पहले ही युवक ने जेब से दो सौ-सौ के नोट निकाले। सिस्टर अग्नेस को दोनों नोट देते हुए युवक बोला, "आज मेरे बेटे का जन्म-दिन है। इस उपलक्ष मे दो-चार लोग घर पर खाना-पीना करते हैं। कुछ खर्च होता है। इस वर्ष कुछ न करके वह रुपये माँ टेरेसा को देने की इच्छा हुई। इसीलिए यह सामान्य-सा दान लेकर मुझे आशीर्वाद दें।" मैंने मन-ही-मन सोचा, 'क्या हम अपने बेटे-बेटियो के जन्म-दिन का खर्च बचाकर उस रुपये को इस तरह दे सकेंगे? कितना ही मामूली क्यों न हो, इस दान का मूल्य ही अलग है।'

सिस्टर अग्नेस बोली, "हर महीने दो रुपये का दान भी हम कृतज्ञता के साथ लेते हैं।"

माँ टेरेसा अधिक शब्दो मे कुछ कहने की पक्षपाती नही हैं। उनके निकट सबसे बड़ा है व्यक्ति-रूप में आदमी। व्यक्ति को छोडकर तो फिर समष्टि नही रहती। यह व्यक्ति का सबंध ही सबसे ऊपर है। बड़े-बडे शहरो मे सब व्यस्त हैं। चारों ओर प्रतियोगिता है। कभी-कभी यह तीव्र हो उठती है। बहुत लोग ताल मिलाकर नही चल सकते। कुछ लोग ठोकर खाकर अपने को संभाल लेते हैं। उठ खड़े होते हैं। प्रतियोगिता का सामना करते हैं। किन्तु जो गिर जाते हैं, उठकर खडे नहीं हो सकते; इनको क्या कोई नही देखेगा? क्या ये प्यार से सदा के लिए वंचित रह जायेंगे?

तभी तो माँ ने कहा है, "यही तो हमारे प्यार के पात्र है। हम कितना कर पाते हैं? जो कुछ करते हैं वह तो 'सागर में बूंद' का-सा है। लेकिन यह बूंद ही न होती तो समुद्र उस एक बूंद से वचित रह जाता।"

अभी तो हमने बस्तियों में बहुत-से स्कूल खोले हैं। कॉपी, किताब, फ़ीस वगैरह कुछ भी छात्र-छात्राओं को नहीं देना पड़ता है। अभी यह प्रायमिक स्कूल न रहने पर कई हज़ार लड़के-लड़कियाँ रास्तों पर पड़े रहते। सड़क पर उन्हें न छोड़कर जैसे-तैसे स्कूल में पढ़ाई-लिखाई का मौक़ा देना क्या अच्छा काम नहीं है?

बत्तीस

आचार्य जगदीश बसु रोड पर मिशनरीज ऑफ़ चैरिटीज के भवन के नीचे छोटे-से बैठक के कमरे में तीन बोर्ड टँगे हैं। एक में चार स्वीकृतियों की बातें लिखी हैं। ये यीशु के दिखाये जीवन का अनुसरण करने के बारे में सोसायटी की स्वीकारोक्तियाँ हैं। चार स्वीकारोक्तियाँ हैं: दरिद्रता, पवित्रता, अनुसरण और दान। एक अन्य बोर्ड पर कई चित्र हैं। यीशु के दिखाये मार्ग पर चलने में क्या-क्या आवश्यक है, यही इन चित्रों में प्रदर्शित किया गया है। चित्रों में है—हर बस्ती में काम में लगी सिस्टर। मुमूर्षु और परित्यक्त लोगों के बीच स्कूल में कुष्ठ रोगियों के बीच, चलती-फिरती डिस्पेंसरी में—ये सर्वत्यागी सिस्टरें कहाँ नहीं हैं! चित्र के ऊपर और नीचे माँ टेरेसा की अपनी प्रार्थना है, 'मेक अस वर्दी, लॉर्ड, टु सर्व अवर फ़ेलो मैन थ्रू आउट द वर्ल्ड, हू लिव ऐंड डाई इन पावर्टी ऐंड हंगर। गिव देम थ्रू अवर हैंड्स दिस डे देयर डेली ब्रेड ऐंड बाई अवर अंडर-स्टैंडिंग लव, पीस ऐंड ज्वाय।"

"दारिद्रय और क्षुधा के बीच ही जिनकी जीवन-मृत्यु है, पृथ्वी पर उन्हीं मनुष्यों की सेवा में जिस प्रकार हम आ सकें, उसीलिए हे ईश्वर, हमें समर्थ बना दो। हमें प्रेम, शांति और आनंद दो।"

प्रत्येक सिस्टर को दरिद्र मनुष्य में देखना होगा; और यही बात सोचकर ही मनुष्य की सेवा करते चलना होगा। यीशु तो छद्मवेश में हमारे निकट इसी प्रकार प्रकट होते हैं।

तीसरे बोर्ड में 1950 ई० में माँ टेरेसा की बनायी सोसायटी के गठन से संबंधित विषय को स्थान मिला है। सोसायटी के उद्देश्यों के संबंध में लिखा है: 'टू क्वेन्च द थर्स्ट ऑफ़ जीसस क्राइस्ट ऑन द क्रास फ़ॉर लव सोल्स् बाई द सिस्टर्स आब्ज़र्वेंस ऑफ़ फ़ोर वेज ऑफ़ पावर्टी, चेस्टिटी, ओबीडियेंस ऐंड चैरिटी।" उसी बोर्ड में भारत और भारत के बाहर किस-किस जगह मिशनरीज ऑफ़ चैरिटीज की शाखाएँ हैं, उस संबंध में भी लिखा है। किस तारीख़ को कौन-

सी शाखा खुली, यह भी उस वोर्ड में है।

भारत में मिशनरीज़ ऑफ चैरिटीज़ के अधीन 60 से ऊपर संस्थाएँ हैं। उनमें 51 को चलाने की ज़िम्मेदारी सिस्टरों पर है। शेष दस-बारह की देखभाल ब्रदर लोग करते हैं। स्कूलों की संख्या 81 है, 335 मोबाइल डिस्पेंसरी, 28 परिवार निर्धारण केंद्र हैं। ब्रदर हैं 185। सिस्टर अग्नेस ने बताया कि चलते-फिरते क्लिनिक में लगभग सोलह लाख रोगियों की चिकित्सा होती है। होम में आजकल मुमूर्षु रोगियों की संख्या करीब दो हज़ार होगी। लिप्रसी क्लिनिकों में तेंतालीस हज़ार से कुछ अधिक रोगियों की चिकित्सा का प्रबंध है। मिशनरीज़ ऑफ चैरिटीज़ पर दो हज़ार परित्यक्त बच्चों के लालन-पालन की ज़िम्मेदारी है। इसके सिवाय प्रतिदिन भूखे और भूख से क्लेश पा रहे लोगों को खाना दिया जाता है। इनकी संख्या कई सौ होगी।

तेंतीस

सिस्टरों को सब तरह के लोगों की सेवा करनी पड़ती है। संक्रामक रोगों से लेकर कुष्ठ तक कुछ भी उनकी सूची में बाक़ी नहीं रहता है। एक सिस्टर बोली, "आस्ट्रेलिया में हम आदिम जातियों और शराबियों तक में काम करते हैं। दवा पीते-पीते बहुतों में दवाइयों के लिए भी दुर्बलता पैदा हो गयी है। ज़रा सोचकर देखिये, हमें इन सब जगहों में काम करने में 'ट्रिक्स' भी रखनी पड़ती हैं। इन लोगों के जीवन का रुख मोड़ने के लिए यह ज़रूरी है।"

एक वृद्ध व्यक्ति ने शराब छोड़ देने का निश्चय किया। कई दिन तक उन्होंने शराब छुयी तक नहीं। किन्तु, एक दिन उन्हीं वृद्ध ने सिस्टर को बुलाकर कहा, "सिस्टर, आप मेरे साथ आइये। बार के बाहर इंतज़ार कीजिये। मैं एक पेग गले के नीचे उतारकर आ रहा हूँ। एक पेग से अधिक किसी तरह न होगा। प्रतिज्ञा कर रहा हूँ।" सचमुच, किसी आदमी को बचाने के लिए धीरज की ज़रूरत होती है। बंगाली लड़कियाँ वैसे भी शराब नहीं छूतीं, किन्तु सुदूर आस्ट्रेलिया जाकर ये लड़कियाँ आसानी से काम करती हैं।

रोम में सिस्टरें बारकों में जाती हैं। बारक माने बस्ती। लंदन में वे जिप्सी और दूसरे गरीबों की सेवा में लगी हैं।

मदर ने किसी-किसी को समझाकर कहा है, "अफ्रीका में गरीब कहकर संबोधित नहीं किया जाता। 'गरीब' शब्द के बहुत-से अर्थ हैं। गरीब न कहकर उन्हें अपना भाई, अपनी बहनें कहना क्या अच्छा नहीं लगता?" दुनिया के किसी

भी देश में किसी भी स्तर के लोगों को भाई-बहन कहकर संबोधित किया जा सकता है। शायद यही सबसे मधुर संबोधन है। इसीलिए तो स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो में विश्व धर्मसभा में भाषण के आरंभ में ही 'सिस्टर ऐंड ब्रदर्स ऑफ़ अमेरिका' कहकर उपस्थित श्रोताओं को संबोधित किया था। उस संबोधन की प्रतिक्रिया क्या हुई थी, यह किसी को अज्ञात नहीं है। पूरे हॉल के श्रोताओं ने जोरों से तालियाँ बजाकर स्वामीजी का स्वागत किया था।

1973 ई० में आई० सी० आई० (इंडिया) ने एक बड़ा-सा मकान माँ को दान में दे दिया था। मकान में कंपनी की एक लेबोरेटरी बनने की बात थी। माँ के निकट प्रेम के संसार में यह एक उदाहरण रहेगा और इसी कारण से माँ ने इसका नामकरण 'प्रेमदान' किया अर्थात प्यार का दान। बड़े-बड़े हॉल-से कमरे, कॉरिडोर, ऑफ़िस—सब जगह अब माँ के स्नेह के संसार के आदमी भरे पड़े हैं।

इस 'प्रेमदान' के फाटक में घुसने पर माँ का बनाया हुआ एक पुनर्वास केन्द्र दिखायी देगा। इस केन्द्र में शहर के रास्तों पर से बीमार लड़के-लड़कियाँ डाभ के खोल बटोर लाकर सिस्टरों के पास जमा करते हैं। केवल एक लॉरी है। सियालदह के रैन-बसेरे में दो छप्पर वाले घर हैं। बड़े-बड़े मकान नहीं हैं। बहुत-से गाड़ी-घोड़े नहीं हैं। आडंबर, शोरगुल, प्रचार कुछ भी नहीं है। केवल सेवापरायण प्राणों की सहानुभूति, हृदय के अशेष प्रेम के पुण्य प्रयास में सामान्य सीमित विषयों की संपत्ति में ही यहाँ माता टेरेसा फेंके हुए डाभ के खोलों से समाज के परित्यक्त अनाथ बच्चों को पुनरुज्जीवित कर रही हैं। इन डाभ के खोलों से माँ टेरेसा ने जीवन-धारण की संपत्ति खोज निकाली है। जो अनाथ बच्चा आज एक-सौ डाभ के खोल इकट्ठे कर ला देता है तो अनाथ जननी टेरेसा के रैन-बसेरे से एक वक्त की खूराक के बारे में वह निश्चित हो जाता है। इन खोलों से तिलजला में माँ के 'प्रेमदान' केंद्र में बनते हैं जाजम, गद्दी के छोवड़े, दरी इत्यादि। पहली समस्या गाड़ी की है। हर बार जितने डाभ के खोल जमा होते हैं उन्हें उस 'प्रेमदान' केंद्र में भेजना संभव नहीं होता। उसका परिणाम होता है कि जिन तमाम अनाथ बच्चों को माँ सियालदह, हावड़ा स्टेशन के प्लेटफ़ॉर्म से, सड़क के फ़ुटपाथों से, बस्तियों के अंधकार से उठा लाकर स्वस्थ नागरिक के रूप में बनाना चाहती हैं वह संभव नहीं हो पा रहा है।

माँ ने बताया, "सियालदह के रैनबसेरे में रात में बस्ती के रहने वालों और फ़ुटपाथ पर रहने वालों को सोने की जगह मिलती है। दिन में बच्चों को एक मग दूध और एक टुकड़ा रोटी मिल पाता है। यहीं उनका अक्षर-परिचय—गानों में, तसवीरों में होता है। रोगी और अस्वस्थों के लिए डिस्पेंसरी है। पूरी दोपहरी और तीसरे पहर तक वे बच्चे सड़कों पर घूम-घूमकर डाभों के खोल इकट्ठा कर लाते हैं। सियालदह के चार नंबर के गेट के अंदर रैनबसेरे की उलटी तरफ़ फ़ुट-

पाथ पर गिन-गिनकर अपने पिरामिड बनाते हैं। संध्या को उन जमा किये हुए डाभों के बदले में मिलता है एक सौ डाभ पर एक पौंड की रोटी या सोलह बिस्कुट। जिसे जो पसंद हो।

सप्ताह में दो बार मिशनरीज़ ऑफ चैरिटीज की लारी इन पिरामिडों को जमा करने आती है। इन डाभों के खोलो पर, आंशिक रूप में ही सही पर, तिलजला के 'प्रेमदान' केंद्र के विकलांग तीन सौ लोगों की जीविका निर्भर करती है। कलकत्ता में धनी लोगों की संख्या कम नहीं है। उनमें से कोई अगर दो-एक लॉरी देकर सहायता करें तो माँ को उससे खुशी ही होगी।

चौंतीस

सियालदह स्टेशन बहुत बार गया हूँ, किन्तु माँ टेरेसा का यह रैनबसेरा कभी दिखायी नहीं पड़ा। आसपास दो छप्पर वाली कोठरियाँ हैं। उन पर ऐस्बेस्टोस की छाजन है। दीवार लाल ईंटों की है।

यहाँ आने के पहले मिशनरीज़ ऑफ चैरिटीज के मुख्य दफ़्तर में गया। उस समय माँ वहाँ नहीं थीं। सिस्टर अग्नेस थीं। सिस्टर अग्नेस ने एक पुर्जे पर मेरा परिचय लिखकर निशावास—रैनबसेरा—की सिस्टर फ़ेबियन के पास भेज दिया।

फ़ेबियन से भेंट करने जाने पर देखता हूँ कि रैनबसेरे के सामने दुखियों की बड़ी भारी लाइन है। बहुतों की गोद में बच्चे थे।

भीड़ हटाकर जाने पर पुर्जा सिस्टर फेबियन को दिया। फ़ांसीसी लड़की फ़ेबियन कुछ दिन पूर्व ही इस निशावास की जिम्मेदारी लेकर आयी हैं। प्रश्न करने के पहले ही पूरे चेहरे पर मुसकराहट फैलाती हुई बोली, "यू सी फॉर योरसेल्फ। आस्क द सिस्टर ऑन ड्यूटी। नो प्रॉब्लम।"

साफ़ फ़र्श पर स्लेट रखकर छोटे-छोटे लड़के-लड़कियाँ लिखने में व्यस्त थे। एक कमरे में तीन-चार बच्चे कैरमबोर्ड खेल रहे थे। उन्नीस बरस की लड़की नीला दरवाज़े के पास चुपचाप खड़ी थी। सिस्टर फेबियन के कहते ही आगे बढ़ आयी। सिस्टर ने छोटे-छोटे लड़के-लड़कियों से परिचय करा दिया। अनिल, सुनील, अमर, समर, निमाई, ममता, आरती—नाम बड़े सुंदर थे। आठ-दस बरस की उम्र के लड़के-लड़कियाँ थे। ज़्यादातर नंगे बदन थे। हाफ पैंट पहने। शरीर नंगा रहने पर भी गर्द का कोई निशान न था। सिस्टरें रोज़ सवेरे उन्हें साबुन-पानी से नहलाती थीं। किसी के बाप है तो माँ नहीं है, किसी के माँ है तो बाप

नहीं। कोई पूरे तौर पर अनाथ है। ठिकाना सबका सियालदह का प्लेटफ़ॉर्म या बहू-बाजार हैरिसन रोड के फ़ुटपाथ थे।

अचानक आठ-नौ बरस के दो बच्चों ने कोई चीज लेकर छीना-झपटी शुरू कर दी। लड़की ने धीरे-धीरे आकर सिस्टर से कहा, "सिस्टर, दादा मुझे बिस्कुट नहीं देता। लेकिन मैं कुछ मिलने पर दादा को दिये बिना नहीं खाती।" सिस्टर ने लड़की के सिर पर हाथ रखकर कहा, "ये दोनों ही अनाथ हैं। और रहते हैं भाई-बहन की तरह। इतना झगड़ा करते हैं। लेकिन दादा अगर रैनबसेरे में लौटने में रात कर दे तो लड़की मेरे पास पूछने चली आती है कि दादा क्यों नहीं लौटा।"

पिछले तीन बरसों से रैनबसेरा चालू हुआ है। इसी बीच छात्र-छात्राओं की संख्या तीन सौ से अधिक हो गयी है। अधिकतर धर्म से मुसलमान हैं। इनके सिवा हिंदू, कैथेलिक ईसाई और प्रोटेस्टेंट हैं। सिस्टर लीला वय में युवती होने पर भी बातचीत और चिंतन में बहुत तेज है। शुद्ध बँगला में बोलीं, "देखिये, इन सब लड़के-लड़कियों को हम आजकल अ, आ, क, ख सिखा रहे हैं। यहाँ क्लास फ़ोर तक पढ़ाने के बाद उन्हें रास्ते के उस ओर सेंट ऐन चर्च बैठकखाने के पास प्रतिभा सेन स्कूल में भेज देना होगा। वहाँ आठवीं तक पढ़ाने का प्रबंध है। अभी तो आप इनको अच्छा देख रहे हैं। जब पहले-पहल यहाँ आते हैं तो इन लड़कों के सारे बदन पर मिट्टी जमी रहती है। और जमी भी क्यों न रहे? इन्हें मिलता क्या है? दोनों वक़्त तो दूर, एक जून भी भरपेट खाने को नहीं मिलता। भूख से परेशान होकर भीड़-भरी ट्रेनों, ट्रामों या बसों में चढ़कर मौके के हिसाब से कोई-कोई पॉकेट मार देते हैं। पकड़े जाने पर फुटकर हिसाब से थप्पड़, ठोकर, घूँसे खाकर अधमरे होकर लौटते हैं। कुछ दिन अलग रहने के बाद बदन का दर्द कम होते-न-होते फिर 'माँ काली' कहकर ये निष्पाप बच्चे निकल पड़ते हैं।"

इस रैनबसेरे में जो आये उनमें से किसी-किसी ने ये बातें सिस्टरों के समक्ष निश्छल भाव से स्वीकार कर लीं। लेकिन रैनबसेरे में ठिकाना मिलने के बाद उनके जीवन में अकल्पनीय परिवर्तन हो जाता है। लड़के-लड़कियाँ ऐसे ही बड़े होकर गुंडे-बदमाश, चोर-चकार बनते हैं। माँ ने खुद इसका जवाब दिया : 'क्यों न बनें? दोष किसका है? इन निष्पाप बच्चों का या समाज का?'

बच्चों का नंगा बदन देखकर बहुत लोग जबानी दुख प्रकट करते हैं। किन्तु क्या इन पाँच सौ बच्चों के लिए कपड़े देने की सामर्थ्य किसी में नहीं है? सियालदह कोर्ट के पीछे चार नम्बर फाटक पर सियालदह स्टेशन के रैनबसेरे से निकलते समय बार-बार आँखों के आगे नन्हें-नन्हें लड़के-लड़कियों के चेहरे तैरने लगे। सांत्वना की बात है कि कम-से-कम माँ टेरेसा ने उनके खाने और रहने का प्रबंध कर दिया है।

मनुष्य के कर्तव्य पूरा करने मे सबसे पहला और मूल धन आंतरिकता ही है। इसके अभाव में सैकड़ो आयोजन और उपकरण बेकार हो जाते हैं। फिर आंतरिक स्नेह के उत्साह से मामूली और कम उपकरणो से भी मनुष्य बहुत-से अच्छे और बड़े-बड़े दृष्टांत स्थापित कर सकता है। चालीस बरस पहले वे इस देश में आयी थी। बिना प्रचार के, चुपचाप गरीबों की झोंपड़ियों में चक्कर लगाकर हजारों दिनों की अथक मेहनत से खोज लिया कि इस देश मे यदि सबमे अधिक किसी चीज का अभाव है तो वह है प्रेम। हममें कोई किसी को प्यार नही करता। हमें इस बात का पता पोर-पोर में लग रहा है। हमारे देश मे लखपतियों का अभाव नही है। कितनी योजनाएँ, कितना खर्च होता है ! कितने सघ, समिति, मठ-मिशन इत्यादि हैं। कहना न होगा कि अधिकाश क्षेत्रो मे उनका अवसर या पहुँच ग़रीबों के लिए संभव नही है। बड़े आदमियो का सहारा न होने पर आजकल कुछ सभव नही होता। आजकल सब-कुछ तथाकथित दूषित राजनीति के अंतर्गत है। ऐसे दिनों में, निराशा और अराजकता के घोर काले अँधेरे में माँ टेरेसा मानो एक शुचिशुभ्रा श्रेयसी उषा हो। भोर का प्रकाश बनकर उन्होने दुख से भरे पीड़ित मनुष्यों को स्वस्थ जीवन का सुख और शांति प्रदान की है। इस प्रकार फ़ुटपाथ के अनाथों के लिए और किसी ने तो इतना कुछ नही किया। वे धन्य हैं ! इस युग की मूर्तिमयी ममता, माँ टेरेसा महान हैं ! वे मानवता की साक्षात प्रतिमा हैं। शाश्वत मातृत्व के स्वत:-स्फूर्त शतदल हैं !

पैंतीस

केवल सियालदह का रैनबसेरा, तिलजला का 'प्रेमदान' ही नही, हर अस्पताल मे जो परित्यक्त शिशु हैं, माँ उन सबको ही गोद में उठा लेना चाहती है। इसके लिए सरकार से माँ ने किसी प्रकार की सहायता की प्रार्थना नहीं की है, कोई माँग नही की है। अख़बार की यह ख़बर मानवीय ममता के अत्यत महान सकल्प और त्याग की घोषणा का प्रचार करती है। माँ टेरेसा इस देश के जनजीवन के लिए, विशेषत: कलकत्तावासियों के लिए एक पुनीत नाम है। महान नारी की आशा, आदर्श, कर्मसाधना और व्यक्तित्व जैसे सेवा और ममता का एक अनंत निर्झर है। अनाथ, दुखी लोगों के व्यथित जीवन की दीर्घ श्वास और वेदना की ध्वनि पाते ही यह महान नारी वहाँ पहुँच जाती हैं। उनकी सेवा के स्पर्श से ही पीड़ितों की पीड़ा कम हो जाती है। यह है मानवता की दुखमय कीचड़ मे धँसे लोगों के उद्धार का महान व्रत। समाचार को कल्पना में चित्रित करने पर यह दृश्य दिखायी पड़ेगा

कि महान माँ टेरेसा दोनों हाथ फैलाकर सहस्राधिक शिशुओं को गोद में उठा रही हैं।

परित्यक्त और उपेक्षित बच्चे हर देश के सभ्य जनजीवन का एक दृश्य होते हैं। जब तक इस समस्या और इन निंदनीय जटिलताओं का अंत नहीं होता तब तक समाज के कोनों में अनाथ बच्चों का रोना सुनना पड़ेगा। यह विपन्न और असहाय मानवता का करुण क्रंदन ही तो है! और सभ्य समाज ऐसे अनाथ बच्चों को पालने के दायित्व को अस्वीकार नहीं कर सकता।

किन्तु, परित्यक्त शिशुओं की रक्षा और पालने के लिए सभ्य समाज के आचरण में आंतरिक ममता के अभाव के कारण समस्या बीच-बीच में और भी निर्मम हो जाती है। परित्यक्त शिशु देखभाल और रक्षा के अभाव में अकाल-मृत्यु का शिकार हो जाते हैं। पश्चिमी बंगाल, और विशेष रूप से कलकत्ता शहर का जनजीवन इस बात से आशान्वित और निश्चित होगा कि माँ टेरेसा ने जब भार लिया है तो अनाथ बच्चों का रोना रुक जायेगा। शिशुमात्र ही माँ की सेवा और ममता का स्वाद पाना चाहते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि माँ टेरेसा का संघ मातृत्वमय ममता के आचरण में आदर्श रूप में अभ्यस्त है।

आश्चर्य की बात है कि महान माँ टेरेसा ने इतना विशाल दायित्व लेने पर भी आर्थिक आवश्यकता का कोई प्रश्न नहीं उठाया। यह समझना होगा कि माँ टेरेसा का विश्वास है कि महान कामों की आवश्यकता में धन का अभाव नहीं होता। यह सेवक और सेविकाओं के ईश्वरपरायण जीवन का एक विश्वास है। हम भी देखते आये हैं कि माँ टेरेसा ने अप्रतिहत उत्साह से सब तरह की सेवाओं को कर्तव्य स्वीकार किया है। पंगु, असमर्थ, अनाथ और रोगियों के प्राण अपने निर्मल हृदय की ममता पर आश्रित हैं। आर्थिक सामर्थ्य का प्रश्न रहने पर भी वह उनकी सेवा और ममता की प्रेरणा को कम नहीं कर सका। रवीन्द्रनाथ की कविता में दुर्भिक्ष-पीड़ित श्रावस्तीपुर की जनसेवा का भार ग्रहण किया था अनाथ पिंडों की कन्या सुप्रिया ने। 'केवल यह भिक्षापात्र है'—इतना ही संबल लेकर भूखों के लिए अन्नदान करने का भार ग्रहण किया था। महान अभीष्ट में लगता है कि यह स्वीकृति निहित होती है कि धनाभाव किसी समस्या के समाधान में बाधा नहीं बनता। आधुनिक समय में माँ टेरेसा इस नैतिक सत्य की साक्षात प्रतीक हैं।

छत्तीस

यह बहुत समय पहले की बात है। उन दिनों गौतम बुद्ध जीवित थे। राजगिरि के

निकट एक स्थान से तीन युवक शहर से दूर एक जंगल के पास चले गये। उनका अभिप्राय था कि सारा दिन बिताकर रात को घर लौटें। तीनों युवकों के साथ शहर की एक नामी वेश्या भी थी। तीन युवकों में दो विवाहित थे। इसीलिए उनकी पत्नियाँ भी साथ थी। तीसरा युवक अविवाहित था। उसने वेश्या को ही पत्नी के रूप में समझ लिया।

शाम होते ही देखा गया कि सब नशे में धुत थे। भद्र महिलाएँ भी बची न रहीं। लेकिन वेश्या यह अच्छा मौका देखकर नशे में धुत महिलाओं के कीमती गहने-पत्तर लेकर भाग गयी।

नशा कुछ कम होने पर सबको होश आया। उन्होंने देखा कि उनके गहने-पत्तर कुछ भी नहीं हैं। वह वेश्या भी कहीं दिखायी न पड़ी।

कुछ दूर पर पेड़ के नीचे एक संन्यासी को बैठे देखकर वे उधर गये। उन्होंने सन्यासी से कहा, "इस रास्ते से किसी रमणी को जाते देखा है?"

सन्यासी-वेश में गौतम बुद्ध ने सब सुनकर कहा, "आप लोगों की सारी बात समझी। आप भले घर की सतान हैं। शिक्षित भी हैं। जरा अच्छी तरह सोचकर देखिये कि कौन चीज ज्यादा अच्छी है? उस औरत की तलाश या अपने को खोजना?"

बुद्ध से यह बात सुनकर उनका मन परिवर्तित हुआ।

यहाँ कहानी को उद्धृत करने के पीछे अपने को खोजने का प्रसग है।

माँ टेरेसा के साथ एक बार बात करने या उनके काम की ओर एक बार नजर पड़ते ही मन में तरह-तरह के प्रश्न उठते हैं। अपने सबध मे कुछ जाने बिना इन कामों मे किसी तरह भी सम्मिलित होना संभव नहीं है। इस अपने को जानने में ही तो सब कामों की शुरुआत है।

तभी तो हम कालीघाट के 'निर्मल हृदय' में देश-विदेश के युवक-युवतियों को देखते हैं। अपने मन से वे इस सेवा के काम को चुन लेते हैं। कुछ दिन सेवा कर फिर अपने देश को लौट जाते हैं। सिस्टर-ब्रदर हमेशा काम करते हों, ऐसी बात नहीं है। बहुतेरे माँ टेरेसा के काम की बात सुनकर खुद ही आगे आ जाते हैं।

अमरीका के एक डॉक्टर के साथ एक साक्षात्कार मे माँ बोलीं, "जो अपनी इच्छा से आना चाहे, उन्हे हम कभी नहीं रोकते। कनाडा से एक लडका केवल दो दिनों के लिए घूमने आया था। उसकी उम्र चौबीस-पच्चीस बरस होगी। एक महीना बीत जाने पर भी लडके ने स्वदेश लौटने की बात नहीं कही। उसका कारण था कि यहाँ का काम उसे बहुत अच्छा लगा था। पिछले इतवार को टालीगंज की बंगाली पत्नी अपने एडवोकेट पति (भट्टाचार्य) को लेकर यहाँ के रहने वालों को खिला गये। इस तरह के बहुत-से लोग आते हैं।

"ईश्वर ने जिन्हे सद्बुद्धि दी है उन्हें कैसे रोका जा सकता है?

"डॉक्टर, तुम्हारे जैसे आदमी की हमें बहुत जरूरत है। तुम आदमियों से प्यार करते हो, और डॉक्टरी भी जानते हो। ये दो गुण सदा हमारे काम में आते हैं। फ्रांस से एक डॉक्टर यहाँ पाँच महीने काम कर गये थे। तुम छुट्टी पाते ही यहाँ चले आना। सिर्फ़ यहीं नहीं, भारत के बाहर लंदन-अमरीका में भी इस तरह की जगहें हैं।"

अमरीका के एक चिकित्सक सज्जन ने जानना चाहा कि उन सब जगहों में एक ही काम होता है या नहीं ?

माँ बोलीं, "काम बिलकुल एक ही ढँग का होता है। ग़रीब सभी जगह हैं, यही न ? हाँ, समस्या में अंतर है। यहाँ लोग खाने की चीजों के कारण भूखे हैं। पश्चिम में इस तरह की जरूरत कम है। वहाँ के लोग इंसान के साथ, अंतरंगता, प्यार के लिए कंगाल हैं। अकेलापन तुम्हारे देश में अभिशाप है। हम लोगों का अभाव पार्थिव है, तुम्हारा मानसिक। इन दो दरिद्रताओं का स्वरूप भिन्न है, किंतु उनकी समस्याएँ एकसमान तीव्र हैं। उलटे तुम लोगों का समाधान बहुत अधिक कष्टसाध्य है। यहाँ कोई भूखा है, उसके आगे खाने की थाली रख देने से समस्या का समाधान हो गया। लेकिन उन देशों के लोगों की भूख—मनुष्य के प्रेम के अभाव से उत्पन्न है। इसके लिए एक थाली-भर खाना रखने के समान क्या थाली-भर प्यार रखा जा सकता है ? इसीलिए यह समस्या अधिक गंभीर है। उसका समाधान भी कठिन है। मेलबोर्न में नशे में चूर और संस्कारहीन लोगों के लिए काम करके हमारी सिस्टरों ने अच्छा फल पाया। अस्पताल के नियमों के अनुसार चिकित्सा में इन क्षेत्रों में बड़ा काम नहीं होता। इसके लिए जरूरत है हृदय की—जो इनके मन को स्पर्श कर सके। उस देश में एक रोगी ने मुझसे कहा था कि उसे अपने मित्र के व्यवहार से बहुत बड़ा आघात लगा है। एक दिन उसी मित्र के साथ वह किसी जगह घूम रहा था। कुछ दूर जाकर दोस्त को छोड़ तेज क़दमों से आगे चला गया। दोस्त ने फिर उसके पास आना न चाहा। यह बात सोचकर उसे अजीब-सा लगा। किंतु हमने मन की इस सूक्ष्म दिशा की बात एक बार भी सोच-कर नहीं देखी। हृदय की ओर से जो भूखे हैं, उनकी भूख मिटाना बहुत कठिन है।

"लेकिन यहाँ हमारे देश के इन सब रोगी लोगों को देखो। जीवन के हर क्षेत्र में वंचित रहकर भी कोई शिकायत नहीं है। अन्न नहीं, वस्त्र नहीं, लेकिन उसके लिए अफ़सोस भी नहीं है। इन लोगों ने सब-कुछ भाग्य को मान लिया है, मानो यही उनकी अवश्यंभावी परिणति है। लेकिन ऐसा तो नहीं है। सहनशीलता असामान्य है और इसी में उनकी महानता है। पाश्चात्य देशों में इस चीज की बड़ी कमी है। उनमें संतोष नहीं है, और इसीलिए दुख बहुत तीव्र लगता है। हमारी तरह वे आसानी से नहीं मान सकते, इसीलिए पश्चिम के लोगों को शांति नहीं मिलती। किंतु इस देश में अकिंचन लोगों के आगे एक थाली भात रखने से ही काम चल

जाता है। सारा अभाव क्षण-भर में दूर हो जाता है। कुछ दिनों पहले यहाँ एक लड़की आयी थी। वह बहुत दिनों से भूखी थी। हमारे थाली-भर खाना उसके आगे रखने पर लड़की कुछ देर तक थाली की ओर देखती रही। उसने बहुत दिनों से भात की सूरत भी नहीं देखी थी। लड़की मर गयी। लेकिन मरने के पहले उसने कोई शिकायत नहीं की, कोई विरोध नहीं किया, किसी को दोष नहीं दिया। केवल चुपचाप देखते-देखते आखिरी साँस छोड़ दी। लेकिन वह विसर्जन भी निःशब्द था। जैसे चुपचाप कहीं चली गयी हो, सोचा ही नहीं जा सकता। कैसा महान है यह जीवन! इन सामान्य लोगों में कितनी असाधारणता छिपी हुई है उसे हम इस तरह की घटना से ही समझ सकते हैं।

"मुझे खुद तो नहीं लगता कि मैं उन लोगों की तरह सहज, सरल हो सकूँगी, प्रतिवादहीन, अभियोगहीन, स्वच्छंद हो सकूँगी।"

अमरीका के चिकित्सक डॉ० स्टेन्च बोले, "मैं अमरीका के बहुत-से अस्पतालों में काम करता हूँ। उस देश के गरीबों में भी काम करता हूँ, लेकिन ऐसा कहीं नहीं देखा। समय और सुयोग पाने पर यहाँ आऊँगा। काम करूँगा। यहाँ दो चीजें हृदय को आकर्षित करती हैं। पहली, रोगियों के प्रति जो प्रेम की जानकारी मिल रही है उसे अमरीका के अस्पतालों में नहीं देखा। दूसरे, यहाँ जिस तरह का मामूली सामान है, जिन दवाइयों और औजारों से काम हो रहा है, अमरीका के अस्पतालों से वह बहुत भिन्न है। वहाँ नयी-नयी दवाइयाँ और सामान हमेशा मौजूद रहते हैं। लेकिन इन मामूली सामानों से भी जो बहुत बड़ा काम किया जाता है वह यहाँ आकर ही समझा जा सकता है।"

सैंतीस

हममें से बहुतों की धारणा है कि मनुष्य निस्पृह, सहानुभूतिहीन, विवेकहीन, शीतल जीवों में परिणत हो रहा है। किंतु माँ उस पर बिलकुल विश्वास नहीं करतीं। यह बहुत गलत धारणा है। इसके विपरीत मनुष्य अब बहुत अधिक सचेतन, विवेचक, सहानुभूतिशील है। प्रतिदिन ही माँ के निकट लोग आते हैं, और सहायता करते हैं। यह आना पहले की तुलना में बहुत-बहुत बढ़ गया है। बढ़ता ही जा रहा है। कुछ बरस पहले ही इस कलकत्ता में सड़क के किनारे एक आदमी को पड़े देखकर लोग न देखने का बहाना करके कुछ न कर, चले जाते। लेकिन अब ऐसा बिलकुल नहीं होता। होता यह है कि रास्ते के आदमी ही उसका कोई प्रबंध करते हैं, नहीं तो वे 'मिशनरीज़ ऑफ चैरिटीज़' को बता देते हैं। अर्थात कुछ-न-कुछ उपकार

किया जा रहा है। यह क्या महान नहीं है? असल वाधा दूसरी है। किसी-न-किसी परंपरागत दुर्दशा में लोग फंसते जा रहे हैं। सूखा, अकाल, वाढ़, दुर्भिक्ष आदि तो लगे ही रहते हैं। यह मनुष्य की अवस्था को अवनति की ओर लिये जा रहे हैं, हम अपने पैरों को अवनति की ओर लिये जा रहे हैं, ये हमें अपने पैरों पर खड़ा नहीं रहने देते।

भारत के संयुक्त परिवारों के टूटने से माँ को वहुत कष्ट है। मां का कहना है, "आज पूरी दुनिया में संयुक्त वातों का वहुत प्रचलन हो गया है। किंतु भारत में संयुक्त परिवार के समान आदर्श 'समवाय' और क्या हो सकता है! किंतु वही संयुक्त परिवार निश्चिह्न होता जा रहा है। इसीलिए पश्चिम के अनुकरण पर यहां भी परिवार के नाम पर पति-पत्नी और उनकी एक या दो संतानें होती हैं। कुछ समय पहले यह अवस्था नहीं थी। भारतीय सामाजिक जीवन को स्वस्थ और वलवान वनाने के लिए फिर उसी संयुक्त परिवार की ओर लौटकर जाना पड़ेगा।

"यह वात मानने की नहीं है कि जगह की कमी के कारण वहुतों को अलग रहना पड़ता है। अलग रहने के ठिकाने के साथ-साथ उनके जीवन भी मानो अलग-अलग हो जाते हैं। वूढ़े मां-वाप, छोटे-छोटे भाई-वहनों की वात वे भूल जाते हैं। यह सचमुच वहुत कष्टकर है।"

दुःस्वप्नों की नगरी, जुलूसों की नगरी—कलकत्ता को किन्हीं भी विशेषणों से क्यों न विभूषित किया जाये, कलकत्ता कलकत्ता ही है। सोचकर ताज्जुव होता है कि इस शहर में ही मां टेरेसा का प्रधान कर्म-क्षेत्र है। उसके सिवा एक और गोरी सिस्टर निवेदिता ने भी पहले कलकत्ता और वाद में पूरे भारत को प्रेम किया था। एक का जन्मस्थान यूगोस्लाविया, दूसरी का जन्मस्थान आयरलैंड था। मां टेरेसा को भी कलकत्ता आने के पहले आयरलैंड में लोरेटो अवे में जाना पड़ा था। दोनों ही अध्यापिकाएँ थीं। वाद में वे सेविका—मातृत्वमय ममता की प्रतीक वनीं। दोनों ने ही कलकत्ता में विद्यालय की स्थापना के माध्यम से अपना कार्य आरंभ किया। सिस्टर निवेदिता का विद्यालय था वाग़वाज़ार के पिछड़े गाँव में, जो आज 'निवेदिता स्कूल' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। और मां टेरेसा ने अपना पहला विद्यालय स्थापित किया वस्तियों में। अर्थात केवल सेवा नहीं, निरक्षर को अक्षरज्ञान करा देना भी इन दोनों के जीवन का अन्यतम उद्देश्य था।

इस सेवा के लिए शक्ति की भी ज़रूरत है।

तभी तो मां ने कहा है, "हम ईश्वर को पाना चाहते हैं। चारों ओर शोर-शरावे से भरे परिवेश में उन्हें देख सकना मुश्किल है। भगवान निस्तब्धता—नीरवता में रहते हैं। प्रकृति की ओर दृष्टि डालकर देखो— वृक्ष, पुष्प, पूर्वादल नीरवता में ही जन्म लेते हैं। आकाश की ओर आँखें करो। वहां भी देखोगे कि चन्द्र, सूर्य, ग्रह और तारों का चलना भी नीरवता में है। वस्तियों में ग़रीव-से-ग़रीव

व्यक्ति के निकट भगवान के अस्तित्व की बात बता देना क्या हमारे जीवन का लक्ष्य नहीं है? वह भगवान मुर्दा नहीं, प्राणवन्त हैं, भगवान प्रेम के आधार हैं।"

देना चाहते हो, कहने-भर से तो दिया नहीं जाता!

नीरव प्रार्थना से हम जितना उनके पास पहुँच सकेंगे, कर्ममय जीवन में हम उतना ही पाने के अधिकारी होंगे। आत्मा के साथ एकत्व के लिए ही नीरवता आवश्यक है। हम कहते क्या हैं वही तो असली चीज नहीं है। किंतु भगवान हममें हैं और हमसे कहलाते हैं। सुंदर-सुंदर शब्दों को सजा कर हम कुछ भी क्यों न बोलें वह सब व्यर्थता में समाप्त हो जायेगा, यदि वह हृदय के अंतस्तल से उच्चरित नहीं होता है। जिन बातों में यीशु का प्रकाश नहीं फैला है वे अंधकार को ही बढ़ाती हैं।

कुष्ठ रोग की चिकित्सा के क्लिनिकों में 43 हजार रोगियों की चिकित्सा हो रही है। शिशु-भवनों में दो हजार बच्चे हैं। किसी को नहीं पता कि अभी तक 'मिशनरीज ऑफ़ चैरिटीज' के दान से कितने लाख क्षुधार्त्त लोगों के अन्न का प्रबंध हुआ! क्रमपूर्वक बढ़ती हुई इस संस्था का हिसाब ही कौन रखे! माँ तो अन्नपूर्णा हैं। किसी मुमूर्षु के आने पर तो माँ उसे लौटा नहीं सकती। चलती-फिरती डिस्पेंसरियों से 16,00,000 रोगियों को चिकित्सा का लाभ पहुँचा है। विभिन्न भवनों में रहने वाले मुमूर्षु व्यक्तियों की संख्या दो हजार होगी। सबसे बाद की गणना के अनुसार देखा गया कि 'मिशनरीज ऑफ़ चैरिटीज' में 135 सिस्टर और 185 ब्रदर हैं।

काम की मान्यता के अनुसार माँ टेरेसा 1962 में 'पद्मश्री' से विभूषित हुईं। उसी वर्ष उन्हें फ़िलिपाइन्स का रेमन मैगसेसे पुरस्कार मिला। इसके नौ वर्ष बाद 1971 ई० में द पोप जॉन तेरहवें का शांति पुरस्कार, द गुड समैरिटन पुरस्कार, और जॉन ऑफ केनेडी इंटरनेशनल पुरस्कार—यह तीनों माँ के भाग्य से प्राप्त हुए। बाद में सन् 1972 में जवाहर लाल नेहरू पुरस्कार पाया। 1974 में मैटरेट मैग्स्ट्रो पुरस्कार मिला। 1975 ई० में एफ० ए० ओ० के सिरेस पदक के एक ओर माँ का चित्र और दूसरी ओर एक कमज़ोर बच्चे को थामे हुए हाथ हैं। 1975 ई० में अंतर्राष्ट्रीय नारी वर्ष में नोबेल प्राइज के लिए भी माँ का नाम आया था। किंतु यह पुरस्कार उन्हें 1979 में मिला।

रुपयों की संख्या में ये पुरस्कार कुल मिलाकर करोड़ों न हों, लाखों तो जरूर ही होंगे। इस धन-प्राप्ति के मूल में है मानव-सेवा का आदर्श। उसी सेवा के काम में पुरस्कारों का सारा धन खर्च हुआ है। रवीन्द्रनाथ के नोबेल प्राइज के धन की बात अलग रखने पर भारत में कवि, साहित्यिक, दार्शनिक, राजनीतिक ऐसा कोई न मिलेगा जिसने स्वेच्छा से परसेवा में पुरस्कार का सारा धन दान कर दिया हो। माँ की बात के अनुसार, "यह पुरस्कार मेरा नहीं है, यह विश्व के

मानवता के पुजारियों का है।"

धन ? धन के लिए माँ को अब हाथ नहीं फैलाना पड़ता। असली धन जिसकी मुट्ठी में आ गया उसे क्या गड्डी-के-गड्डी नोटों के लिए परेशान होना पड़ेगा ? धन मिल जाता है और यह धन ही कुछ अनर्थ न उत्पन्न करे, उस ओर भी माँ की बहुत ही सतर्क दृष्टि है। सिस्टरें जिससे अपने कठिन जीवन में ज़रा भी न डगमगायें, उस ओर भी सदैव नज़र रखनी पड़ती है। किसी मुमूर्षु या अवांछित व्यक्ति को 'निर्मल हृदय' में जो खाने को दिया जाता है वही खाना सिस्टर-ब्रदर भी खाते हैं। रहने की जगह में भी बहुत अंतर नहीं है। कपड़े-लत्ते भी मामूली रहते हैं। आनंद और अटूट विश्वास के सिवा उनकी और कोई पूँजी नहीं है।

क्या काम कर रहे हैं और उसका परिमाण कितना है—इसे लेकर सोच-विचार करने से कोई फ़ायदा नहीं। तभी तो माँ कहती हैं, "इट इज़ नॉट हाउ मच वी आर डूइंग बट हाउ मच ऑनेस्टी, हाउ मच फ़ेथ इज़ पुट इनटु डूइंग इट।" यह मन, यह विश्वास जिनमें है वे ही कह सकते हैं, 'दारिद्रय ही हमारी प्रतिज्ञा है।'

भारतीय, विशेष रूप से बंगाली, लड़कियाँ सामान्यत: घर-गृहस्थी में रहने की ही अभ्यस्त होती हैं। किन्तु इन सिस्टरों में जब बंगाली (ईसाई ही हों) लड़कियों को देखता हूँ तो सचमुच अच्छा लगता है। नशे में धुत, पंगु, अवांछित, रोगी लोगों के पास बैठकर ये निरंतर सेवा करती रहती हैं। सेवा के संसार में 'न' के लिए कोई स्थान नहीं है। 'निर्मल हृदय' की उस महिला की बात बहुत दिनों तक याद रहेगी। मुमूर्षु महिला माँ को देखकर बोलीं, "मेरा जीवन सार्थक है। माँ मेरी स्वयं भगवती हैं।" 'मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़' के एक साथी बोले, "माँ सचमुच पवित्र हैं। वे साधु हैं। मैं कहता हूँ कि वे जीती-जागती साधु हैं।"

एक डॉक्टर बोले, "इस सबके पीछे भगवान का हाथ है।"

चाहे जिस भाव से देखिये, माँ माँ हैं। माँ सबको प्यार करती हैं। और उनमें जो संतान कमज़ोर होती हैं उनके प्रति उसका आकर्षण अधिक रहता है। हमारी माँ टेरेसा भी अपवाद नहीं हैं। माँ जिस तरह सबके लिए अनंत प्यार देती हैं उसी तरह वे खुद भी प्यार के लिए कंगाल हैं।

माँ के जीवन में बड़े-बड़े लेख, सुन्दर-सुन्दर शब्द-चयन से समृद्ध भाषण या किसी पुस्तक की रचना—इनमें से कुछ भी नहीं है। उनका सब-कुछ छोटा है। हृदय बड़ा है। छुटपन में स्कपजे शहर में एक दिन रात की वह घटना अब तक उनके मन में है। रात के वक़्त तीन भाई-बहन पढ़ने के कमरे में बैठे स्कूल की एक अध्यापिका की समालोचना कर रहे थे। माँ टेरेसा की माँ ने साथ के कमरे से बत्ती बुझा दी। बोलीं, "औरों की समालोचना के लिए तो मैं अपने घर की रोशनी की बर्बादी नहीं कर सकती।" तभी से माँ बातों की अपेक्षा काम से ही अपने को प्रकट करने की पक्षपाती हैं।

आनन्द ही प्रार्थना है—आनन्द ही शक्ति है—आनन्द ही प्रेम है—प्यार के जाल-सा यह आनन्द ही आत्मा को पकड़ सकता है। जो आनन्द के साथ यथाशक्ति दे सके वही भगवान के प्यार का अधिकारी है। जो प्रसन्न मन से दान करता है वही तो सबसे बड़ा दानी है। भगवान के निकट, मनुष्य के निकट कृतज्ञता प्रकट करने का उत्तम मार्ग है—सब-कुछ हँसते हुए स्वीकार कर लेना, प्यार के सिवा भगवान का साथ पाना किसी प्रकार संभव नहीं है। इसलिए भगवान को स्वर्ग की ओर न देखकर इसी पृथ्वी पर—मर्त्य में प्यार के द्वारा उसे पा सकते हैं। इसके लिये आवश्यक है कि हमें—

जिस प्रकार वे प्यार करते हैं उसी प्रकार प्यार करना होगा,
जिस प्रकार वे सहायता करते हैं उसी प्रकार सहायता करनी होगी,
जिस प्रकार वे देते हैं उसी प्रकार देना होगा,
जिस प्रकार वे सेवा करते हैं उसी प्रकार सेवा करनी होगी,
जिस प्रकार वे उद्धार करते हैं उसी प्रकार उद्धार करना होगा,
सोने में, सपने में, सदा ही उनका स्मरण करना होगा, उनके साथ रहना होगा,
छद्मवेशी, दुखी के रूप में ही उनका स्पर्श पाना होगा।

दयालु और क्षमाशील बनना होगा। जो तुम्हारे पास एक बार आये वह लौटते समय और भी अधिक प्रसन्न होकर लौटे। दयालु भगवान की प्रतिमूर्ति मानो सदा ही तुम्हारे हृदय में, मन में प्रकाशित होती रहती हो। मुखाकृति में वही दया होगी। दया आँखों से प्रकाशित होगी, मुसकराहट में और आदर सहित तुम्हारी बोलचाल में व्यक्त होगी। बस्तियों में हम ही दरिद्रतम लोगों के निकट भगवान की दया के प्रकाश के समान होंगे। शिशु, दरिद्र जो तरह-तरह से कष्ट और दुख भोग रहे हैं उन्हें हार्दिक प्रेम की आवश्यकता है।

माँ ने अपने सहकर्मियों को एक चिट्ठी में लिखा था, "यीशु समझकर सबकी सेवा कर सकने पर ही विश्व में शांति के द्वार खुलेंगे। यीशु ने स्वयं ही तो कहा है :

मैं क्षुधार्त्त हूँ—केवल भोजन के लिए ही नहीं, शांति के लिए भी किन्तु वह शांति आयेगी पवित्र हृदय से।

मैं प्यास से व्याकुल हूँ—पेय ही नहीं, युद्ध की तृष्णा जिससे मिटे, वह शांति, परिपूर्ण शांति ही मुझे काम्य है।

मैं वस्त्रहीन हूँ—वस्त्रों की कमी से नहीं, नर और नारी के असम्मान के कारण।

मैं बेघर हूँ—ईंट-पत्थर के बने आश्रय के अभाव में नहीं, उस हृदय के अभाव में जो प्यार बाँट सके।

"क्षमता के लोभ को त्यागकर सबको प्यार करके ही भगवान को पाया जा सकता है।

"घृणा, द्वेष, हिंसा के हाथों से मुक्ति पाने का एकमात्र हथियार प्रेम है। मुसकराते हुए सब काम करते रहने में ही जीवन का माधुर्य निहित है। इस माधुर्य का स्वाद जिसे एक बार मिल गया उसे और सब-कुछ छाया के समान ही लगेगा। इच्छा करने और पाने की अंतिम सीमा पर खड़े होकर केवल यह प्रेम बाँट सकना ही जीवन की सार्थकता है।"

बचपन के उन दिनों की बातें माँ के मन में आज भी गुँथी हुई हैं। उस समय माँ माँ नहीं हुई थी। अग्नेस गोनाक्सा वेजाक्सिउ (Agnes Gonaxha Bejaxhiu) की उम्र उस समय मात्र बारह बरस थी। इस उम्र में ही वेजाक्सिउ के मन में यह विश्वास दृढ़ हुआ कि वह संन्यासिनी बनेगी। दो बरस बाद उसकी पुकार हुई। सिस्टर ऑफ लोरेटो के काम में सम्मिलित होकर उसे कहाँ जाना पड़ेगा, यह उन्होंने झट-से समझ लिया। हाँ, उन्हें भारत जाना होगा। उन्हें जीवन का शेष भाग वहीं बिताना पड़ेगा। ईश्वर के काम के लिए उस युवती ने प्रसन्नता से अपने को समर्पित कर दिया।

हजारों संन्यासिनी इसके पहले भारत आ चुकी थीं। पहले माँ भी उनका अपवाद न थीं। भारत की धरती पर पैर रखते ही उन्हें दार्जिलिंग जाना पड़ा। वहाँ लोरेटो कॉन्वेंट में पढ़ाने का दायित्व उन पर आया। ब्रिटिश राज्य के समय दार्जिलिंग गर्मियों में गवर्नर के अवकाश का स्थान था। हिमालय का सौंदर्य, माल पर टहलना, जिमखाना क्लब में नाच के बाद रात्रिभोज—यही सब ब्रिटिश लोगों के लिए आकर्षण की चीजें थीं। कंचनजंघा का शुभ्र समुज्ज्वल रूप देखने के लिए इस शैलशिखर पर आना होगा। सिक्किम-भूटान की पंक्ति-की-पंक्ति पर्वतमालाएँ तो इसके चारों ओर हैं। दार्जिलिंग में ब्रिटिश लोगों का एक शिक्षा-केन्द्र था।

युवती संन्यासिनी ने 1931 ई० की 24वीं मई को शपथ ली।

दार्जिलिंग से माँ चली गयीं कलकत्ता। कलकत्ता और दार्जिलिंग में कोई तुलना ही नहीं है। दार्जिलिंग के साथ माँ की जन्मभूमि यूगोस्लाविया के ग्रामांचल की कुछ समानता है।

कलकत्ता में लोरेटो कॉन्वेंट में आयीं। सियालदह स्टेशन के पीछे इस कॉन्वेंट के चारों ओर जनाकीर्ण बस्ती है। निकट ही कारखाना है। चिमनी के धुएँ के सिवा कुछ दिखायी नहीं पड़ता। पास ही आदमियों के बनाये हुए छोटे-बड़े-मझोले पहाड़ों की तरह ढेर-के-ढेर कूड़े हैं। हवा में चमड़े की गंध उड़कर आती। कुछ गजों के अंदर ही चमड़े का कारखाना था। लेकिन दीवारों से घिरे कॉन्वेंट के अंदर का हरा-भरा उद्यान बहुत ही मनोरम है। बहुत बड़े मरुस्थल में वह मरुद्यान

की तरह है।

इंटाली लोरेटो की अधिकांश लड़कियाँ पितृ-मातृहीन अथवा तलाकशुदा हैं। इनमें प्रत्येक जाति और धर्म की लड़कियां हैं। उसी प्रांगण में एक और स्कूल है, जिसका नाम है सेंट मेरी। इस स्कूल में बंगाली लड़कियां लिखना-पढना करती हैं। कलकत्ता के अभिजात घरों की लड़कियाँ यहाँ की विद्यार्थी हैं। इस स्कूल में ही पहले सामान्य अध्यापिका और बाद में अध्यक्ष बनकर मेरी टेरेसा आयीं। 1937 में इस स्कूल में ही उन्होंने अंतिम शपथ ली।

सेंट मेरी स्कूल में मां का कोई स्मृति-चिह्न नहीं है। माँ जहाँ बैठती थीं वह कमरा है। उस कमरे में अब दूसरी अध्यापिकाएँ बैठती हैं। मां ने खुद ही तो कहा था, "मैं-मैं करने से कोई लाभ नहीं। कर्म ही जीवन है।"

बीस बरस पहले की बात होगी। उस समय डॉ० विधानचन्द्र राय मुख्य-मंत्री थे। राइटर्स बिल्डिंग के गलियारे में नीले पाड़ की साड़ी पहने महिला को देखकर उनकी समझ में नहीं आया कि यह माँ टेरेसा हैं। उनकी वेश-भूषा बहुत ही साधारण थी।

मां टेरेसा की छात्राओं में एक पहले आगे आयीं। इस बंगाली छात्रा का नाम था सुभाषिणी दास। सुभाषिणी इस समय सिस्टर अग्नेस नाम से सब जगह परिचित हैं। छोटी-सी यह महिला कैमरा देखकर आतंकित हो गयीं। बातचीत से अधिक काम ही को चाहती हैं। स्वल्पभाषी अग्नेस के गले की आवाज़ कोमल होने पर भी उनके चेहरे-मोहरे पर दृढ़ता की छाप सुस्पष्ट है। वे पिछली बातें जानना चाहने पर टाल जाती हैं। कुछ पूछते ही दो-एक काग़ज़ आगे बढ़ा देती हैं। ज्यादा अनुरोध करने पर मां के पास जाने को कहती हैं। बहुत ही अच्छी बंगला बोलती हैं और अंग्रेजी का प्रयोग भी कम नहीं करतीं।

सिस्टर अग्नेस 1949 ई० को 29 मार्च को मां टेरेसा के साथ सम्मिलित हुईं। इसके दो बरस पहले 1947 में पंद्रह अगस्त को हमने स्वतंत्रता प्राप्त की। अग्नेस की अपनी जुबानी : "इंटाली में मैं मां की विद्यार्थी थी। नौ बरस की उम्र में जब मैं पहले-पहल स्कूल में आयी तब से मेरा मां से परिचय है। स्कूल में मुझे याद है कि अंतिम वर्ष था, ठीक उसी वक़्त मां ने स्कूल छोड़ दिया। जब सुना कि मां स्कूल छोड़कर जा रही हैं तो बड़ा दुख हुआ। फ़ादर हेनरी ने ही पहले समाचार दिया। बोले, 'रोम से विशेष अनुमति मिली थी। ईश्वर की पुकार पर उनको ग़रीबों की सेवा (वह कितनी ही सामान्य क्यों न हो) में अपने को लगाना होगा।' हम छोड़नेवाले नहीं थे। फ़ादर से पूछा, 'ग़रीबों के लिए कुछ करने के लिए बुलाहट क्यों हुई? और भी तो संन्यासिनी थीं?' फ़ादर हेनरी बोले, 'किसी को जबर्दस्ती इस मार्ग पर नहीं उतारा जा सकता है। यह तो भगवान की पुकार है। इस पुकार पर जाना ही पड़ेगा। भगवान के पुकारे बिना इस काम में उतरना

किसी तरह संभव नही है।' हम, जिन्होंने माँ का सामीप्य पाया था बहुत ही खिन्न हो रहे थे। उनके चले जाने का एक और बड़ा कारण हुआ—उन्होंने कॉन्वेंट स्कूल से ही ग़रीबी को देखा। और उस ग़रीबी को दूर करना ही उनके जीवन का संकल्प बन गया।"

लोरेटो छोड़ने के लिए माँ ने रोम से अनुमति की भिक्षा माँगी। साथ-ही-साथ उन्हे अनुमति मिल गयी। एक बरस के लिए यह अनुमति मंजूर हुई। यह बात भी बता दी गयी कि अगर वे अपने काम में सफलता न पा सकें, तो फिर लोरेटो के जीवन मे लौटकर आ सकती हैं। लेकिन माँ क्या फिर लौट सकेंगी? यह तो भगवान की ही पुकार थी। उस पुकार का जवाब दिये बिना क्या माँ रुक सकेंगी? भगवान ने ही तो गरीब आदमियों की सेवा मे जीवन और मन समर्पित करने को कहा है। प्रार्थना अवश्य ज़रूरी है। प्रार्थना के बिना भगवान नही मिलता।

किन्तु सेवाविहीन प्रार्थना से भगवान के पास नही पहुँचा जा सकता। यह अनुमति माँगने की बात जितनी आसान लगती है उतनी सहज है नहीं। रोम से आवेदन करने के पहले माँ को अपना अभिप्राय 'सुपीरियर' को समझाना पड़ा था।

माँ पहले लोरेटो से पटना गयी। वहाँ चार महीने मेडिकल ट्रेनिंग ली। 'द होली फ़ैमिली' की सन्यासिनियाँ अभी तक वहाँ हैं। वे सदा सहायता करने को तैयार हैं। अकेले माँ ने ही नही, बाद मे मिशनरीज़ ऑफ चैरिटीज़ के बहुत-से लोगों ने यहाँ ट्रेनिंग ली। कलकत्ता लौटने के बाद सर्कुलर रोड पर 'लिटिल सिस्टर्स ऑफ द पुअर' भवन मे उन्हे जगह मिली। इस भवन से ही उनके नये जीवन का बाहरी प्रकाश हुआ। प्रतिदिन सवेरे वे सड़क पर निकल जाती। दो-चार रोटियाँ और कुछ दवा-दारू उनके साथ रहते। उनका गंतव्य स्थान एक बस्ती से दूसरी बस्ती था। सदा ही कुछ-न-कुछ काम होता। सदैव सेंट टेरेसा में जाकर प्रार्थना मे बैठती। थाली में कुछ बचा रह जाने पर (प्रायः बचता न था। सब ही शायद बाँट देती थी।) उसे खाती।

माँ टेरेसा की तरह सिस्टर अग्नेस भी अपने संबध में कुछ बताना नही चाहती। और-तो-और माँ के काम मे सम्मिलित होने मे वे सबसे पहले आयी थी—इतना बताने मे भी उन्हे बहुत सकोच था। लोरेटो का आराम का जीवन छोडकर माँ ने सड़क पर जीवन बिताने की अनिश्चयता को प्रसन्नता से ग्रहण किया। कहाँ खायेंगी, रहेंगी कहाँ, और खाने का ठिकाना ही कैसे होगा?—माँ ने इन सब बातो की ज़रा भी चिंता न की। क्या सचमुच चिंता करने की कोई ज़रूरत है? माँ यह अच्छी तरह जानती हैं कि यीशु ही उनसे सब करा लेंगे। सोचना होगा तो वे ही सोचेंगे। इस प्रगाढ़ विश्वास ने ही उनके जीवन की सारी बाधा-विपत्तियों को धो-पोंछ फेंका है। और इस विश्वास के स्रोत हैं—यीशु।

"जब भी मैं कल के लिए सोचती तो मां मुझे झिड़क देतीं। कहतीं, 'क्यों? भगवान क्या हमें देख नहीं रहे हैं?' मां की यह बात अक्षरशः सत्य है। सत्ताईस बरस के इस जीवन में हमने कितने लोगों के मुंह में खाना दिया! और हमारा अपनी आय का कोई ठिकाना नहीं। लोगों के दान पर ही सब-कुछ निर्भर करता है। भगवान की करुणा से ही हृदयवान लोग हमारे पास आते हैं, यथाशक्ति सहायता करते हैं।

"अब विभिन्न संस्थाओं से हमें सहायता मिलती है। शुरू में यह सब-कुछ न था। मां खुद ही पहले ख़ाली टीन लेकर इस कलकत्ता शहर में सड़कों पर निकल पड़तीं। वे घर-घर जाकर कहतीं, 'खाना फेंकें नहीं। अगर कुछ हो तो इस टीन में दें।' मां की देखा-देखी सिस्टरें भी निकलतीं। टीन में इकट्ठा किया हुआ खाना वे ग़रीबों में बांट देतीं। जिन लोगों में काम करने की शक्ति नहीं होती उन्हें भी खाना दिया जाता। दिन-भर जिस आदमी के पेट में एक दाना भी न पड़ा हो उसे क्या भूखा लौटा दिया जाये? आप बीमारी में मर सकते हैं, लेकिन बिना खाये-सोये तिल-तिलकर मृत्यु की ओर बढ़ते जाने से अधिक सांघातिक अवस्था और कौन-सी हो सकती है? सियालदह, हावड़ा स्टेशन पर ग़रीब आदमियों की भीड़ रहती है। वे बिना खाये प्लेटफ़ॉर्म के एक कोने में पड़े रहते हैं। इस तरह वे धीरे-धीरे मृत्यु की ओर बढ़ते रहते हैं। मां सदा इन लोगों की बात सोचती हैं। मान लीजिये मां हवाई जहाज़ से कहीं जा रही हैं। यात्रियों के पास जाकर झुक-कर कहती हैं, 'आप लोग दया करके बचा हुआ खाना फेंकें नहीं। दया करके मुझे दे दें। मैं ले जाऊंगी।' यह हैं मां!"

अकसर किसी के कुछ चीज़ों के दान करना चाहने पर भी सिस्टर उसे नहीं ले सकतीं। एक बार एक सज्जन ने 'मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़' को वाशिंग मशीन देनी चाही। मां ने सब सिस्टरों को बुला भेजा। शायद परीक्षा लेना चाहती हों। सभी एक साथ बोलीं कि इस मशीन की उन्हें कोई ज़रूरत नहीं है। सिस्टर बोलीं, "मां, हम अपने कपड़े खुद ही साफ़ करेंगे।" और इसी कारण मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़-भवन में अभी तक वाशिंग मशीन न घुस सकी। टेलीफ़ोन के वक़्त भी इसी तरह की बात हुई। पहले मां के पास कोई फ़ोन न था। किन्तु जब मां ने देखा कि काम की सुविधा के लिए फ़ोन की बहुत अधिक ज़रूरत है तो उन्होंने एक टेलीफ़ोन लिया। अब उसी को सब काम में लाते हैं। मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज़-भवन की पहली मंज़िल पर बैठने के छोटे कमरे के सिवा उस घर में कहीं पंखा नहीं है। और चैपल में है। बाहर के लोग प्रार्थना करने को आते हैं, इसीलिए यह प्रबंध है। भगवान के बनाये इस संसार में मुक्त वायु के सेवन में कोई रुकावट नहीं है। वह है भी काफ़ी। दुनिया में आदमी जिस परिमाण में दुख और कष्ट सहन करता है उसकी तुलना में इतना-सा कष्ट तो कुछ भी नहीं है।

संन्यासिनियों के जीवन में आरंभ से ही सफ़ेद साड़ी और पूरी आस्तीन का सफ़ेद ब्लाउज होता है। इस जीवन की पहली शर्त है—काम के समय कोई भी भवन में बैठा नहीं रह सकेगा। किसी-न-किसी काम के लिए सबको निकल पड़ना होगा। टेलीफ़ोन आये तो समाचार बताने और जानने के लिए आदमी की जरूरत है।

सिस्टरें सवेरे चार बजे बिस्तर छोड़ देती हैं। सवेरे साढ़े-छः बजे तक प्रार्थना होती है। इसके बाद ही सवेरे का जलपान। काम पर निकलने से पहले सिस्टरों को खुद अपने कपड़े-लत्ते और घर साफ़ करना होता है। दोपहर को संन्यासिनियाँ भवन में लौट आती हैं। आहार आदि और प्रार्थना होती है। इसके बाद नियमित कक्षाएँ होती हैं। नियमावली और 'स्क्रिप्चर्स' पढ़े जाते हैं। सफ़ेद साड़ी के बदले नीले किनारे की साड़ी पहनने के पहले उनकी परीक्षा ली जाती है। जो पूरी तौर पर संन्यासिनी हैं वे साढ़े-बारह बजे आती हैं। दो बजे फिर निकलना होता है। लौटती हैं शाम को साढ़े-सात बजे। प्रार्थना के लिए सबको आना पड़ता है। यह बहुत जरूरी है। माँ कभी नही चाहती कि मिशनरीज ऑफ़ चैरिटीज की संन्यासिनियाँ केवल 'समाज-सेविका' मात्र रहें। यह अनुभूति होते ही मनुष्य की सेवा करना एक सार्थक रूप ले लेता है।

सिस्टर अग्नेस की तरह सिस्टर फ़्लोरेंस, सिस्टर बर्नार्ड भी पहले माँ की विद्यार्थी रह चुकी हैं, जो अब माँ के काम मे योग देती है।

अड़तीस

तभी तो माँ ने कहा है, "आज सबसे बड़े रोग कुष्ठ या यक्ष्मा नही है। उससे अधिक समाज मे वे लोग जो अपने को परित्यक्त समझते हैं, अवांछित और उपेक्षित कहकर जो अपनी कोठरी के एक कोने मे सिकुड़े रहने मे लगे हैं वे ही सबसे भयंकर रोग से ग्रस्त हैं। यही रोग असली रोग है। समाज का सबसे बड़ा शत्रु है—प्यार के अभाव का बोध। रास्ते के किनारे का फुटपाथ ही जिनका घर है उनके बारे में क्या हम एक बार भी सोचते हैं?"

अभी कुछ दिनों पहले उत्तरी कलकत्ता के देशबंधु पार्क के पास राजा दीनेन्द्र स्ट्रीट पर एक लॉरी फ़ुटपाथ पर चढ़ गयी। उस समय रात के दो बजे होंगे। दस-बारह लड़के-लड़कियाँ और उनके माँ-बाप गहरी नींद में सो रहे थे। लॉरी के पहियों से सब पिस गये। फिर उनकी नींद कभी नही टूटी।

यह घटना अखबारों में दूसरे दिन बड़े-बड़े शीर्षकों के साथ प्रकाशित हुई।

घटना सुनने के बाद बहुतों ने दुख प्रकट किया। लेकिन हमें तो यातायात मार्ग के किनारे यह दृश्य निरंतर देखने को मिलते हैं। उस समय क्या हमारा मन इन सब आश्रयहीन लोगों के लिए रो नहीं पड़ता है? इसी मन के रो पड़ने का दूसरा नाम प्यार है।

माँ टेरेसा उम्र में मुझसे छब्बीस वर्ष बड़ी हैं। किन्तु और चीज़ों में उससे भी बहुत-बहुत बड़ी हैं। युवावस्था में क़दम रखते ही इस कलकत्ता में आयीं। उस वक़्त तो मैं माँ के पेट में भी नहीं आया था। अठारह बरस की वह तरुणी यौवन, प्रौढ़त्व लांघकर वय-भार से आज थोड़ा झुक गयी है। सत्तर बरस में से लंबे बावन बरस इस शहर में ही बिता दिये। परित्यक्त, अवांछित, अनाहूत लोगों के बीच ही वे जीवन का शेष भाग बिता देंगी।

सूर्योदय से बहुत पहले यीशु की मूर्ति के आगे नतजानु होकर निःशब्द प्रार्थना से शक्तिसंग्रह और उसी शक्ति को सूर्य के प्रकाश के समान प्रसारित करने में ही उनके रोज़ाना के काम की शुरुआत होती है। बहुत ज़रूरी काम न होने पर दिन के अंत में आचार्य जगदीश बसु रोड के आसमानी रंग के उस मकान में लौट आती हैं। रात में ग्यारह के बाद वे सोने जाती हैं। लेकिन सिस्टरों को भी नहीं मालूम कि माँ कब गहरी नींद में सो जाती हैं। बारह, एक, दो—कुछ भी समय क्यों न हो, एक बार पुकारने पर ही सबको माँ का जवाब मिल जाता है। बिस्तर छोड़कर चली आती हैं। बारह-तेरह घंटे तो हैं ही, कभी-कभी यह महान महिला और भी अधिक समय काम में डूबी रहती हैं।

अगर राह में चलते-चलते कभी भी नीले किनारे की सफ़ेद साड़ी और पूरी आस्तीन का ब्लाउज पहने, छाती पर क्रूस का चिह्न लगाये किसी महिला को बस्ती में ग़रीबों की पुरानी कुटिया में देख सकें, तो समझ लो कि सशरीर न होने पर भी माँ टेरेसा वहाँ मौजूद हैं। उनकी ही कोई सिस्टर इस काम में लगी हैं। कुमारी अवस्था में जो माँ बन जाती हैं उनके लिए माँ टेरेसा की चिंता का अंत नहीं। शायद इसलिए कि अस्पतालों में परित्यक्त बच्चों की संख्या बढ़ती जा रही है। इसके लिए माँ भ्रूणहत्या स्वीकार नहीं कर सकतीं। उनके प्यार के पात्र दुखी लोग हैं। अनाथ अबलाओं की आँखों में आँसू देखते ही माँ का हृदय बच्चों की तरह रो पड़ता है। फ़ोटोग्राफ़र को देखकर जिस तरह सिर झुका लेती हैं, उसी तरह जिनको प्यार करने वाला कोई नहीं है उन्हें देखते ही उनका मुँह झुक जाता है। माँ मुँह से मुँह को स्पर्श करने का आनंद प्राप्त करती हैं। आत्मस्थ हो जाती हैं। शायद मन-ही-मन सोचती हैं कि उनके इस प्यार का स्पर्श कितने लोगों को मिला है।

ईसाई धर्म में दीक्षित करने के लिए नहीं, सब ही ईश्वर की संतान हैं—इस विश्वास से ही माँ ने सेवा के काम में अपने को नियुक्त किया है।

...यदु के बगीचे में एक दिन रामकृष्ण घूमने आये। बैठक में बैठकर यदु से बातें करने लगे। सहसा दीवार पर टँगी एक तसवीर पर उनकी नजर पड़ी। बहुत अच्छे भावों का चित्र था। माँ और पुत्र का। माँ की भरी बाँहों की लपेट में एक पवित्र शिशु, उषा के आकाश में उगते प्रथम सूर्य की भाँति था। माँ की बड़ी-बड़ी विभोर आँखों में द्रवीभूत स्नेह और चेहरे पर तृप्तिपूर्ण मुसकराहट थी। शिशु के चेहरे पर जो पापरहित सरलता थी उसे जैसा रामकृष्ण ने समझा वैसा क्या कोई समझेगा?

"यह कौन हैं जी?"

"एक मेमसाहब और उसका बच्चा है।"

वही होगा। रामकृष्ण ने दूसरी ओर आँखें फेरना चाही। लेकिन आँखें फेरना इतना आसान न था।

"सच बताओ न—यह कौन हैं? वह तो ज्योतिर्मय देवशिशु दिखायी दे रहे हैं। और उसकी माँ तो पुण्यमयी पवित्रता ही है।"

"माँ मेरी और उनका बेटा यीशु ख्रीस्ट हैं।"

रामकृष्ण एकटक देखते रहे। देखा कि यशोदा हैं और उनकी गोद में बाल गोपाल हैं। सीधे शंभु मल्कि के पास पहुँचे। बोले, "मुझे यीशु ख्रीस्ट की कहानी सुनाओ।"

रामकृष्ण ने देखा कि वही चित्र जीवित हो उठा है। माँ और बेटे के दिव्य शरीरों की ज्योति से दशों दिशाएँ भरी जा रही हैं। और उनका भीतर-बाहर उसी ज्योति-स्नान से धुला जा रहा है। इतने दिनों का जमा पक्का संस्कार उखड़ा जा रहा है।

तुम परम योगी परम प्रेमी कौन हो? कौन हो तुम 'आदित्य-वर्ण तमसः परस्नात्?'

ससार के दुख-गहन से जीवों के उद्धार के लिए सर्वस्व दे दिया! जिसका त्राण करने आये उनके ही हाथों हँसते हुए प्राण दे दिये। जो यंत्रणा के निवारण के लिए आया वह यत्रणा ही क्षमा बनकर, प्रेम बनकर, शांति बनकर प्रकट हुई .।

माँ टेरेसा ने भी तो देखा—विश्व मे सर्वत्र ही तो यह यीशु विराजमान हैं। यीशु मानकर दुखी की पीड़ा में जीवन समर्पित कर देना ही माँ टेरेसा के जीवन का चरित्र और परम उद्देश्य बना।

तारीख़ याद नहीं है। आचार्य जगदीश बसु रोड पर निर्मला शिशु-भवन मे उपासना-कक्ष के निकट बरामदे मे एक मेज के आगे खड़े होकर माँ से बातें हो रही थी। माँ ने मेरे वदन पर हाथ रखकर कहा, "फिर आना।"

वे काबुली चप्पल उतार कर उपासना-कक्ष मे चली गयी। यीशु की मूर्ति के आगे घुटने टेककर बैठ गयी। आश्विन की उतरती साँझ। रवीन्द्रनाथ के 'गोरा'

की आनंदमयी मां की कहानी मन में कौंध गयी। आयरिश पिता का परित्यक्त बेटा गोरा अपना वास्तविक परिचय जानने के बाद आनन्ददमयी से बोला था, "मां, तुम ही मेरी मां हो। जिस मां को खोजता फिर रहा था वे ही मेरे घर में आकर बैठी थीं। तुम्हारी जात नहीं, विचार नहीं, घृणा नहीं—हिंदू, मुसलमान, ईसाई, ब्राह्मण—सबकी ही तुम कल्याण की मूर्ति हो। तुम ही मेरा भारतवर्ष हो।"

जीवन-परिचय

1910 ई० की 27 अगस्त को युगोस्लाविया के स्कापजे शहर में अग्नेस गोनाक्सा बेजाक्सिउ ने जन्म लिया। बाद में माँ टेरेसा। माँ-बाप का पैतृक स्थान अलबेनिया। एक भाई, दो बहनें। माता-पिता विगत। शहर के सरकारी स्कूल में शिक्षा का श्रीगणेश। स्कूल में रहते ही वे 'सोडालिटी' की सदस्य बनीं। उन्हीं दिनों युगोस्लाविया के जेसुइट लोगों ने 'कैलकटा आर्कडायसिस' काम लेने की सम्मति दी। जेसुइटों का पहला दल 1925 ई० की 30 दिसम्बर को कलकत्ता आया। इसमें एक जेसुइट को कर्सियांग भेजा गया। कर्सियांग से इस जेसुइट ने बंगाल मिशन फ़ील्ड के संबंध में युगोस्लाविया को एकाधिक उत्साहजनक चिट्ठियाँ भेजीं। उन चिट्ठियों को 'सोडालिस्टों' को नियमित रूप से पढ़ाया जाता। युवती अग्नेस ने कलकत्ता जाने की इच्छा व्यक्त की। आयरलैंड में संन्यासिनियों के साथ उनका संपर्क करा दिया गया।

सन् 1928, 29 नवंबर। इस दिन उन्हें आयरलैंड (राथफ़र्नहैम—डब्लिन) में लोरेटो अबे में और फिर डब्लिन से भारत भेजा गया। भारत में आते ही वे सीधे दार्जिलिंग में 'नोविसियेट' शुरू करने के उद्देश्य से चली गयीं।

सन् 1929-48। कलकत्ता के इंटाली में सेंट मेरीज हाईस्कूल में भूगोल की अध्यापिका के रूप में काम किया। कुछ समय वे उस स्कूल की अध्यक्ष भी रहीं। लोरेटो सिस्टर्स के साथ परोक्ष रूप से सबद्ध इंडियन रिलिजन ऑर्डर की 'डाटर्स ऑफ़ सेंट ऐन' की जिम्मेदारी निबाहती रहीं।

सन् 1946, 10 सितंबर। 'ए डे ऑफ़ डिसीजन' या 'निर्णय लेने का दिन।' माँ टेरेसा ने लोरेटो के निश्चित सुख का जीवन छोड़कर दरिद्रतम मनुष्यों की सेवा के लिए अपने को समर्पित करना चाहा। इसके लिए अधिकारियों से अनुमति लेकर उन्होंने जो प्रार्थनापत्र दिया वह रोम भेजा गया। रोम भेजने के साथ ही उनका प्रार्थनापत्र स्वीकृत हो गया।

सन् 1948, 18 अगस्त। माँ टेरेसा ने लोरेटो के वस्त्रादि छोड़ दिये। भारतीय नारी की तरह साड़ी पहनी। नीले पाड़ की सफ़ेद साड़ी। कंधे के पास टाँक

लिया क्रूस का निशान। नर्सिंग ट्रेनिंग लेने के लिए वे तीन महीने के लिए पटना की अमरीकी मेडिकल मिशनरी सिस्टरों के पास गयीं। बड़े दिन के बीच ही वे कलकत्ता लौट आयीं। कलकत्ता आकर वे 'लिटिल सिस्टर्स ऑफ़ द पुअर' संस्था में आयीं। रहने-खाने की भी व्यवस्था नहीं थी।

सन् 1948, 21 दिसंबर। मोतीझील बस्ती में उन्हें पहला स्कूल खोलने की अनुमति मिली। उसी बरस भारत की नागरिक बनीं।

सन् 1949, फ़रवरी। सियालदह के पास माइकेल गोमेज नामक भले आदमी के घर में एक छोटे-से कमरे में जाकर रहीं।

सन् 1949, 19 मार्च। प्रथम सिस्टर ने माँ टेरेसा के रजिस्टर में नाम लिखाया। यह बंगाली सिस्टर थीं—सिस्टर अग्नेस। पहले का नाम था सुभाषिणी दास। माँ की ही विद्यार्थी थीं।

सन् 1950, 7 अक्तूबर। मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज से संबद्ध अधिकारियों से अनुमोदन प्राप्त किया। मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटीज का भवन कलकत्ता में स्थापित हुआ और कलकत्ता से ही सारे भारत में फैल गया। पता, 54-ए, आचार्य जगदीश वसु रोड, कलकत्ता।

सन् 1962। फ़िलिपाइन में रैमन मैगसेसे पुरस्कार। फ़िलिपाइन के दिवंगत प्रेजिडेंट के नाम पर यह पुरस्कार था इंटरनेशनल अंडरस्टैंडिंग से संबंधित। उसी वर्ष भारत का 'पद्मश्री' का सम्मान भी मिला।

सन् 1963, 25 मार्च। नयी शाखा मिशनरी ऑफ़ ब्रदर्स के शुभारंभ पर कलकत्ता के आर्चबिशप ने आशीर्वाद दिया।

सन् 1964, दिसंबर। महामान्य पोप ने बंबई में यूकरिस्टिक कांग्रेस में माँ टेरेसा और उनके मिशनरीज ऑफ़ चैरिटीज़ को अपने उपयोग में आने वाली गाड़ी दान की।

सन् 1965, 1 फ़रवरी। मिशनरीज ऑफ़ चैरिटीज, प्रधान पादरी संबंधित अधिकारों की सोसायटी में परिवर्तित हुआ।

सन् 1965। वेनेजुएला में नये केन्द्र की स्थापना।

सन् 1967। कोलम्बो में नये केन्द्र की स्थापना।

सन् 1968। तन्ज़ानिया के टोबारा और रोम में बस्तियों के अंदर नये केन्द्रों की स्थापना।

सन् 1969। आस्ट्रेलिया के ब्रुक में।

सन् 1969, 26 मार्च। 'द इंटरनेशनल एसोसियेशन ऑफ़ कोवर्कर्स ऑफ़ माँ टेरेसा' को मिशनरीज ऑफ़ चैरिटीज़ का अनुमोदन मिला, और एसोसियेशन का संविधान पवित्र पोप पाल छठे को दिखाने पर उन्होंने आशीर्वाद दिया।

सन् 1970, अप्रैल। मेलबोर्न में।

सन् 1970, जुलाई। अमान (जॉर्डन) में।

सन् 1970, 8 दिसंबर। यूरोप और अमरीका के 'नोविसेज' की ट्रेनिंग के लिए लंदन में एक 'नोविसियेट' की स्थापना हुई।

सन् 1971, 6 जनवरी। माँ टेरेसा को पोप जॉन तेरहवें का शांति पुरस्कार मिला। पुरस्कार माँ टेरेसा के हाथ में पोप पॉल छठे ने दिया।

सन् 1971 में न्यूयॉर्क में गुड सैमेरिटन अवार्ड मिला।

सन् 1971 में वाशिंगटन में केनेडी इंटरनेशनल अवार्ड।

सन् 1971 में कैथलिक यूनिवर्सिटी ऑफ़ अमेरिका प्रदत्त सम्मानसूचक उपाधि : डॉक्टर ऑफ़ ह्यूमन लैटर्स।

सन् 1972 में दिल्ली में जवाहरलाल नेहरू अवार्ड फार इंटरनेशनल अंडर-स्टैंडिंग।

सन् 1973 में लंदन में फाउंडेशन प्राइज़ फ़ॉर प्रॉग्रेस इन रिलीजन।

सन् 1975 में मेक्सिको में अंतर्राष्ट्रीय नारी-वर्ष के उपलक्ष्य में आयोजित सम्मेलन में विशेष अतिथि।

सन् 1975 में मिशनरीज़ ऑफ चैरिटीज़ के पच्चीस बरस पूरे होने के उपलक्ष्य में रौप्य जयंती उत्सव।

सन् 1975 में अगस्त में फाउ (एफ-ए-ओ) के सिरेस पदक के एक ओर माँ टेरेसा का चित्र (ब्रिटेन के कलाकार माइकेल रिज़ेलो द्वारा चित्रित), दूसरी ओर दोनों हाथ फैलाये एक नवजात शिशु को चिपटाये हुए का दृश्य।

सन् 1976, नवंबर। कैंटरबरी के आर्चबिशप डोनाल्ड कोगन ने मिशनरीज़ ऑफ चैरिटीज़ के आचार्य जगदीश बसु रोड पर परित्यक्त शिशुओं का आवास-स्थान निर्मला शिशु-भवन, काली घाट पर मुमूर्षु लोगों के आश्रय-स्थल निर्मल हृदय की स्थापना की।

सन् 1976 के नवंबर महीने में विश्व बैंक के प्रेज़िडेंट रॉबर्ट मैकनमारा की पत्नी ने कलकत्ता में माँ टेरेसा को कालीघाट के निर्मल हृदय देखने के बाद सम्मति दी, "सचमुच माँ टेरेसा उज्ज्वल-दुर्लभ व्यक्तित्व हैं।"

सन् 1979 में नोबल शांति पुरस्कार।

सन् 1980 में 'भारतरत्न' उपाधि से विभूषित।